अनुक्रमणिका

श्रद्धा के दो शब्द

मानव जीवन के विकास सम्बन्धी इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि मानव निरन्तर व्यक्ति एव समूह के जीवन की विषमताओं से सघर्ष करता आया है, एव समता की साधना मे निरत रहा है। इस सघर्ष को अब तक जितनी सफलता मिली है इसके प्रकाश मे कई व्यक्तित्त्व भी आदर्श एव समादरणीय बनते रहे है। विषम-ताओं से सघर्ष का उद्देश्य रहा है अधिकाधिक सम-वातावरण एव सम-प्रगति मार्ग का निर्माण। विषमता से सन्ताप जन्म लेता है और यही सन्ताप आर्तध्यान एव रौद्रध्यान की मलिन धाराओं में आत्मा को ढकेलता हुआ उसे अधोगामी बनाता है। इसलिए समता की ओर अग्रसर होने की चेष्टा जीवन को 'कु' से 'सु' की ओर गतिशील बनाने की चेष्टा कहलायेगी।

समता मानव जीवन की अमृतमयी भावना है, क्योकि यही भावना जब कार्य एव आचरण के रूप मे उभरती है तो व्यक्ति के जीवन मे उदात्तता, सहनशीलता एव सत्प्रेरणा जागृत होती है। व्यक्ति की ऐसी जीवनधारा जब सम्यक्त्व की श्रेष्ठता की ओर उन्मुख होती है तो वह निश्चय ही सारे समाज की विचार एव आचार की धाराओ को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहती। पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म सा के प्रस्तुत सकलन मे आबद्ध प्रवचन इसी प्रकाशमयी दिशा की ओर मानव जीवन को अनुप्रेरित करते है।

एक साधक और आचार्य श्री जैसे प्रबुद्ध एव कर्मठ साधक जब अपने ज्ञानानुभव के आधार पर प्रवचन-प्रवाह से जो मार्ग दर्शन देते हैं, वह अतर-भाव की दृष्टि से एक उन्नायक वैशिष्ट्य लिए हुए होता है। उसे हृदयगम करना और उसमे अपने आचरण को ढाल देना एक सच्चे भक्त का काम होता है। समता-दर्शन पर आधारित ये प्रवचन ससार एवं उसमे साधारण रूप से चल रहे जीवन की कुटिल विषमताओ को गहरी दृष्टि से समझाकर उन्हे दूर करते हुए समतामय जीवन निर्माण की एक नई दिशा देते है। पाठक यदि इन सकलन को आत्म-जागृति के साथ एव अनुभूतिपूर्वक पढेंगे

तो अवश्य ही उन्हे अपने समग्र जीवन को उत्कृष्ट, भावना के प्रवाह मे परिवर्तित करने की अनूठी प्रेरणा प्राप्त होगी ।

वचन प्रवचन तभी बनते है जब वे प्रबुद्ध जनो की शास्त्र सम्मत विचारणा से उभर कर उनकी अपनी मौलिक निष्ठा को छूते हुए निकलते हैं । यही कारण है कि प्रवचन भावनाशील श्रोता अथवा पाठक के हृदय को सीधे तौर पर सवेदित करते हैं । इसके साथ ही यदि उसकी भावना ने प्रवचन के प्रवाह मे समग्र रूप से अवगाहन किया तो वह श्रोता या पाठक कर्मठ बनकर स्वय एव समूह दोनो के जीवन मे आदर्श उत्थान की प्रेरणा फूंकता है । प्रस्तुत सकलन के प्रवचन उत्थान की इसी दिशा को प्रकाशित करते हैं ।

उपदेष्टा जब उपदेश देते है तो जिस भाव, भाषा एव शैली का प्रयोग करते हैं—उसका अभिप्राय यही होता है कि वे श्रोता के हृदय को स्पन्दित करें । उपदेष्टा के प्रत्यक्ष दर्शन एव श्रवण का जो सीधा सुप्रभाव होता है उसे उस प्रवचन की सम्पादित लिपिबद्धता मे बनाए रखना सरल नही होता, फिर भी प्रयास उसकी श्रेष्ठता मौलिकता के निर्वाह की तरफ ही होनाचाहिए । इस सकलन को व्यवस्थित रूप देने मे श्री शान्तिमुनि जी ने कठिन श्रम किया है वह इस दृष्टि से सार्थक रहा है तथा यह सकलन पाठको के लिए सुबोध, पठनीय एव प्रेरणादायक बन पडा है ।

मुझे विश्वास है कि समतादर्शन की गहराइयो को समझने एव उनमे अपनी अनुभूति को क्रियाशील दृष्टि से जागृत करने मे इस सकलन से पाठक अवश्य उद्वोधित होगे ।

—शान्ति चन्द्र मेहता
एम ए. एल-एल. वी एडवोकेट
प्रधान सम्पादक ललकार साप्ताहिक
एव अध्यक्ष अभिभापक सघ चित्तोडगढ राज०

जयपुर
दि २६-६-१६७२

प्रकाशकीय

श्रद्धेय जैनाचार्य श्री नानालाल जी म सा. श्रमण परम्परा के एक उन्नत साधक तो है ही, किन्तु जैन समाज के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र भी हैं। सासारिक वासनाओ के पक से जिनके चरण प्रारम्भ से ही तनिक भी मलिन नही हुए है तथा जिन्होंने अपने जीवन का श्री गणेश ही आत्मिक साधना से किया है, ऐसे इन आचार्य श्री की प्रतिभा एव इनका प्रभाव अनुपम है। आचार्य श्री बाल ब्रह्मचारी हैं एव इन्होंने अपने दीर्घ दीक्षा काल मे महान् धर्म-यश का अर्जन किया है। समूचे साधु समाज के लिये आप एक अतुलनीय आदर्श हैं। वीतराग वाणी के आप प्रखर प्रवक्ता हैं तथा इनका एक-एक वचन आत्म ज्ञान की दृष्टि से 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' के लक्ष्य से युक्त होता है। ऐसे महापुरुष का चातुर्मास जयपुर मे सम्भव हो सका यह हम सबके लिये सौभाग्य की बात है।

आचार्य श्री के इन्हीं विचारपूर्ण प्रवचनो के व्यापक प्रसार की दृष्टि से इसी हेतु निर्मित प्रवचन प्रकाशन समिति ने इनके क्रमबद्ध प्रकाशन की योजना बनाई और उसी के कार्य रूप मे यह प्रथम सकलन प्रस्तुत है। इस शृंखला मे 'पावस प्रवचन' के शीर्षक से ही सात सकलन और प्रकाशित किये जायेंगे जिनमे चातुर्मास के समस्त प्रवचनों का सम्पादित रूप समुपस्थित हो जायगा। इस रूप मे जयपुर चातुर्मास की यह सुखद स्मृति भी रहेगी।

सूक्ष्म विवेक आचार्य श्री के जीवन की प्रमुख विशेषता है तथा उनका प्रत्येक प्रवचन साधु मर्यादा एव शास्त्राज्ञा की सीमा मे आबद्ध होता है। अपने नपे तुले शब्दो मे वे उपदेश देते हैं जिसका एक मात्र उद्देश्य आत्म जागृति होता है। उनके इन उपदेशो के प्रकाशन या मुद्रण से उनका कोई सम्बन्ध नही है अत इन पावन प्रवचन माला मे कोई भी शब्द या वाक्य सदोष आ गया हो अथवा मूल भावो मे कोई अन्तर दिखाई दे तो उसके लिये हम ही उत्तरदायी हैं, क्योंकि ऐसी भूल हमारे से ही प्रमाद वश सभव है। गुरुदेव का कार्य तो प्रवचन देना मात्र है। उनके प्रकाशन, मुद्रण एव प्रसार

की समस्त व्यवस्था हमारी अपनी है। जिसकी भूलो को स्वीकार करना भी हम अपना कर्त्तव्य समझते है।

पावस प्रवचन माला को व्यवस्थित रूप देने मे आचार्य श्री के सुशिष्य श्री शान्ति मुनि जी महाराज के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, आपने इन प्रवचनो का अवलोकन करके हमारे इस कार्य को सुगम बनाया है इसके लिये समिति उनकी कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त वे प्रमुख रूप से सर्व श्री बालचन्द जी बैद, नरेन्द्र जी भाणावत, चेनसिंह जी बरला, प्रेमराजजी बोगावत, श्रीचन्द जी सुराणा, 'सरस' एव श्री सुगनचन्द जी तातेड चुन्नीलाल जी ललवानी आदि महानुभावो ने अपना जो भावनापूर्ण सहयोग दिया है, तथा श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री रामनारायण जी मेडतवाल ने बडी तत्परता के साथ सुन्दर मुद्रण कर समय पर कार्य सपन्न किया एतदर्थ हम उनके प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करते हैं।

यदि समग्र समाज ने इन प्रकाशनो को पसन्द किया तथा विज्ञ पाठको ने इनको पढकर अपना कर्त्तव्य बोध लिया तो हम अपने इस प्रयास को सार्थक समझेंगे।

प्रस्तुत सकलन की श्रृंखला मे आगे भी इस चातुर्मास मे आचार्य श्री द्वारा दिये गये समस्त प्रवचनो का पावस प्रवचन के नाम से विभिन्न सकलन प्रकाशित करने की प्रवचन प्रकाशन समिति की योजना है। इस रूप से जयपुर चातुर्मास की पवित्र स्मृति तो रहेगी ही किन्तु यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि भी होगी। आशा है कि सभी सहृदय सज्जनो का सहयोग मिलता रहेगा।

विनीत

जयपुर
लाल भवन
४-१०-७२

पारसमल डागा
सयोजक एव प्रबन्ध सपादक
प्रवचन प्रकाशन समिति

चारित्र चूडामणि जैनाचार्य

श्री १००८ नानालालजी

महाराज साहब

के

जयपुर चातुर्मास

के

प्रेरक-पावन प्रवचन

हम सबको आत्म-जागृति में

सहायक हों

श्री अखिल भारतीय

साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

समय तत्थुवेहाए अप्पाण विप्पसायए

—आचाराग ३।३

राग-द्वेष उत्पन्न करने वाले पदार्थों के प्रति समता—उपेक्षाभाव रखते हुए आत्मा को सदा प्रफुल्लित रखना चाहिए।

---

१ | सुख का मार्ग—समता

जय जय जय भगवान, जय जय भगवान,
अजर अमर अखिलेश निरंजन, जयति सिद्ध भगवान। जय जय०
अगम अगोचर तू अविनाशी
निराकार निर्भय सुखराशी।
निर्विकल्प, निर्लेप निरामय निष्कलंक निष्काम। जय जय० ३।

जीवन की एकरूपता

यहां पर परमात्मा की प्रार्थना की गई है क्योंकि इस विश्व में प्रत्येक भव्य प्राणी के लिए प्रभुपद चरम आदर्श है। मानव को किस रूप में बनना है, और वास्तविक मानव जीवन की सार्थकता किसमें है, इस बात को समझने के लिए किस दिव्य आदर्श की आवश्यकता है, और वह दिव्य परमपवित्र आदर्श क्या है? जिसमें किसी भी प्रकार का कलंक न हो, विकास की चरम सीमा हो,

अर्थात् आत्मिक शक्ति का सर्वाङ्गीण विकास जिसमे हो चुका हो, जाति, गोत्र, व्यक्ति, पार्टी से सर्वथा भिन्न हो, समकारक हो और वास्तव मे प्राणियो के लिए समभाव का चरम स्वरूप हो। ऐसे आदर्श को सामने रखकर यदि मानव अपनी वृत्तियो को मोड दे दे तो आज जो ससार की विषम दशा दृष्टिगत हो रही है, वह सारी की सारी समाहित हो जाय। मानव का मस्तिष्क जव नही समझता है तो—मस्तिष्क मे अनेक प्रकार की विपम वृत्तिया घर किये रहती है, जब मस्तिष्क विषमता की भावना को लेकर चलता है तो भावना के अनुसार उस मानव की वृत्तियाँ भी विकृत वनती है। एक दृष्टि से देखा जाय तो मानव का मस्तिष्क विचारो का एक मुख्य केन्द्र है, उस केन्द्र मे यदि समता भाव के साथ वास्तविक तत्त्व दृष्टि आ जाय, विचारो का परिमार्जन होकर शुद्ध वृत्तियो का प्रादुर्भाव हो तो मस्तिष्क सुधर जाय, तात्पर्य यह है कि विचारो की शुद्धि हो मस्तिष्क की शुद्धि है और विचारो को शुद्धि से आचार पवित्र बनता है। उस व्यक्ति की वाणी का धारा भी पवित्र गगा की तरह बहने लगती है, और जो भी वचन व्यक्त होते है वे प्रत्येक मानव के दिल को प्रमुदित करने वाले बन जाते है। विचारो के वदल जाने से इन्सान का जो आचार होता है, वह भी बदल वगर नही रहता है। विचार, आचार और उच्चार जब तीनो की एक-रूपता बनती है। उस वक्त मनुष्य के स्वय के जीवन की विषमताओ की तमाम स्थितियाँ समाहित हो जाती है, और वह अपने जीवन मे एकरूपता की भावना का अनुभव करता है। वहभावना पास-पड़ौस मे रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित करती है और विस्तार करते हुए वह समाज, राष्ट्र और विश्व को आप्लावित करता है। आज इसी अनुसधान को आवश्यकता है।

आज यद्यपि विश्व के अन्दर मानव का मस्तिष्क शान्त नही है।

वह विभिन्न प्रकार की खोजो मे लगा हुआ है। वह चाहता यही है, कि इस मानव जीवन मे परम शान्ति का स्वरूप, परम पवित्र रूप, वास्तविक सुख का स्थान उपलब्ध हो। इस आकांक्षा से व्यक्ति अपना रास्ता स्वत बनाता जाता है। अपने मन की कल्पना के अनुसार वह खोज मे लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि अमुक स्थल पर कुछ उसे उपलब्धि होने वाली है तो वहाँ जाने मे भी वह सकोच नही करता है चाहे वह समुद्र की गहराई मे हो, चाहे वह पहाड़ो की विकट ऊँचाई मे हो, चाहे भयावना जगल हो, लेकिन मानव उस उपलब्धि के लिए अपनी सारी चिंताएँ छोडकर आगे बढ़ता ही जाता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान प्रगति कर रहा है किन्तु यह प्रगति अधूरी है क्योकि इस वैज्ञानिक स्थिति के साथ मे, मानव का मस्तिष्क विज्ञान ही को सब कुछ समझकर चल रहा है। विज्ञान के विषय मे यदि विस्तृत व्याख्या की जाय तो किसी के मतभेद का प्रश्न ही नही आता। विज्ञान के अन्दर सब तत्वो का समावेश है, विज्ञान के अन्दर सब का समन्वय है। यदि विज्ञान के अर्थ को सकुचित किया जाय और सिर्फ भौतिक तत्वो के विकास को ही विज्ञान कहा जाय तो वह विवाद का विषय बन जाता है क्योंकि विज्ञान भौतिक तत्वों का भी होता है और आध्यात्मिक जीवन के साथ भी उसका गहरा सम्बन्ध है। एक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन मे ही विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन मानव का मस्तिष्क, अन्तर की उस आध्यात्मिक शक्ति को लक्ष्य बनाने मे अभी तक पूरा कामयाब नहीं बन सका है। यही कारण है कि वह बाहरी पदार्थों में सुख-शान्ति को खोज रहा है। इस प्रकार विज्ञान की अनेको उपलब्धियां होने पर भी मानव को अभी तक सन्तुष्टि नही मिल रही है, शान्ति और समता के दर्शन पूर्ण रूप मे नही हो रहे हैं। मानव तथाकथित उपलब्धि से सन्तुष्ट है, लेकिन वस्तुत. यह स्थिति दिन-प्रति दिन

उसके जीवन को विषमतर बनाती चली जा रही है। वह चाहे भू-मण्डल से उठ कर गगनमण्डल मे उडने के लिए, चाहे आकाश के अन्दर चमचमाते हुए सितारो को पकडने के लिए दौडे, चाहे तथा-कथित चॉद आदि ग्रहो पर पहुच जाय, लेकिन वहा पर भी वह वास्तविक शान्ति का स्वरूप, परमपवित्र रूप उपलब्ध होने वाला नही है। एक दृष्टि से देखा जाय तो यह खोज एकागी बन रही है, उस एकागी खोज को मोडदेकर सर्वांगोण खोज के साथ अगर जोडा जाय तो मानव-जीवन की तमाम समस्याएँ एक समता के धरातल पर सुलझ सकती है।

अभी जिन सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना की गई है उस प्रार्थना मे अनुसधान का सकेत है। आज भौतिक अनुसधान तीव्र गति से बढ रहा है किन्तु आध्यात्मिक अनुसधान के अभाव मे वह निर्जीव है, उसमे वह रौनक नही है जो आज के मानव जीवन के लिये नितान्त आवश्यक है अत· हमे आध्यात्मिक अनुसन्धान की ओर जीवन को मोड देना है। इसीलिए कविता मे सकेत दिया गया है—

"तुझ मे मुझ मे भेद न पाऊं ऐसा हो सधान।
अजर अमर अखिलेश निरजन जयति सिद्ध भगवान ॥"

बन्धुओ, कविता का सकेत निमित्त मात्र है, लेकिन वह सकेत यदि हमारी अन्तर की दृष्टि को, अन्तर की जिज्ञासा वृत्ति को अन्तर की तमन्नाओ को, अन्तर के उल्लास आदि को आध्यात्मिक दृष्टि की ओर मोड दे और हम आध्यात्मिक अनुसन्धान मे लग जायँ तो कविता का सकेत हमारे लिये आदर्श बन सकता है। इस कडी मे तो बडा लम्बा-चौडा सकेत दिया गया है। परमात्मा का अनुसधान करने के लिए "तुझ मे मुझ मे भेद न पाऊँ, यह लक्ष्य के रूप मे रखा गया है। आत्मा का विकास इतना हो कि परमात्मा के तुल्य मैं बन जाऊँ। यह वास्तविक समता का परम आदर्श है, और उस स्थिति मे गरीव और अमीर का भेद नही है, सुख और दुर्भाग्य की स्थिति

नहीं है, वह वास्तव मे स्थायी समता का परम रूप है। उस परम रूप का अनुसंधान करने के लिए यदि व्यक्ति निश्चय कर लेता है कि मैं अनुसंधान के साथ भगवान के तुल्य बनूँ, इतना बडा लक्ष्य जब स्थिर होता है तो वह व्यक्ति उस लक्ष्य को केवल आदर्श के रूप मे नही रखेगा, लेकिन यथार्थवाद की भूमिका पर वह जीवन को सुधारने का प्रयास करेगा। और सुधार की स्थिति के साथ जब जीवन में परिवर्तन होगा उसका आचरण उसी समता सिद्धान्त के साथ जोड कर उस रास्ते पर चलेगा तो उस जीवन का रूप कुछ और ही होगा।

आत्मा मे परमात्मा

मैं इधर उधर परिभ्रमण करता हू। वह परिभ्रमण उसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए है। आत्मिक शक्तियो का विकास हो और जन मन मे समता सिद्धान्त की भावना प्रचारित हो। यद्यपि आज विश्व के अन्दर जिन-जिन बातो का वायुमण्डल बन रहा है, वह चाहे राजनैतिक धरातल पर हो, चाहे सामाजिक क्षेत्र मे हो, उन क्षेत्रो मे जो यह आवाज बुलन्द हो रही है कि समता प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अग बने। शाब्दिक दृष्टि से भले ही उसे समता न कहकर, समाजवाद के रूप मे कहे लेकिन वह समाजवाद भी वास्तविक हो। यह समाजवाद भी प्राणवान कब बनेगा, जब कि वह समता सिद्धान्त दर्शन को अपने स्वरूप मे स्थान देगा। समता सिद्धान्त-दर्शन का तात्पर्य सबको एक ही रूप मे देखने का नही है। बच्चा बच्चे के रूप मे रहेगा, वृद्ध वृद्ध के रूप मे समझा जाएगा, तरुण तरुण के रूप मे देखा जाएगा। बच्चे की आवश्यकता क्या है अर्थात् बच्चे को किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता प्रेरित कर सकती है यह भी देखना होगा। इसप्रकार समता की व्यापक परिभाषा के अनुसार जो सर्वांगरूप होगा वह समता सिद्धान्त के साथ होगा। समता सिद्धान्त वस्तु के वास्तविक रूप को उपस्थित करता है। जो वस्तु जैसी है उसे

उसी रूप मे देखा जाय। उसके वास्तविक रूप को विकृत न करके वस्तुतत्त्व का निर्णय किया जाय तो समता सिद्धान्त दर्शन का दार्शनिक रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। किन्तु हम समता सिद्धान्त के दार्शनिक रूप मे ही न उलझ जाएँ उसे जीवन के कर्तव्य क्षेत्र मे चरितार्थ करे ताकि समता सिद्धान्त के अनुरूप समता जीवन दर्शन का निर्माण है। और इस प्रकार जब समता जीवन दर्शन मे छोटी-छोटी बातो को ठीक तरह से समाहित करके उनको समता सिद्धान्त के साथ असली रूप देंगे, तो समता जीवन दर्शन के धरातल पर उस आध्यात्मिक दर्शन की उपलब्धि होगी। जिसे हम आत्मदर्शन की सज्ञा देते हैं। आत्मदर्शन की प्राप्ति के साथ जब आध्यात्मिक उल्लास और आन्तरिक निर्विकारदशा जागृत होगी तो जीवन समता परमात्मा-दर्शन के रूप मे परिवर्तित हो जाएगा। वही समता की पराकाष्ठा होगी, वही समता का चरम स्वरूप होगा और वही आत्मा का चरम साध्य परमात्म पद होगा। अर्थात् आत्मा स्वय परमात्मा के रूप मे परिलक्षित होगा। इसीलिए कहा गया है कि आत्मा स्वय परमात्मा बन सकती है। आचार्यों कथन का है **अप्पा सो परमप्पा**—जो आत्मा है, वही परमात्मा है, लेकिन कब ? जब सारी विषमताएँ दूर हो जायेंगी, सर्वत्र परम पवित्र समता का साम्राज्य हो जायेगा।

आत्मा जब चरम, सर्वांगीण समता रूप मे पहुच जाती है, तब वह निर्विकार दशा को प्राप्त हो जाती है, यही परमात्मा के तुल्य बनना है। इसी का अनुसन्धान हमे करना है, जिसका कि कविता मे सकेत किया गया है।

यह जयपुर नगर राजस्थान की राजधानी के रूप मे प्रसिद्ध है। इस नगर में जब होली चातुर्मास के आसपास उपस्थित हुआ था और यहा कुछ रहने का प्रसग भी आया उसके पश्चात जयपुर सघ का अत्यधिक आग्रह होने से चातुर्मास का प्रसग भी यहा

बना। चातुर्मास की दृष्टि से मैं यहां आ भी गया हूं लेकिन अब जयपुर संघ को क्या करना है ? राजधानी की जनता को अपने जीवन में वास्तविक रूप से कुछ परिवर्तन लाना है ? या उन्हीं कुरीति रिवाजों के साथ अपने जीवन की इतिश्री करनी है। जो बातें इतने दिनों से चलती आ रही हैं, प्रत्येक व्यक्ति के साथ जो कुछ रूढ़ियां लगी हुई हैं जिनमें वह अपने आपको आबद्ध पाता है, वह अपने आपको खोलने की कोशिश नहीं कर पा रहा है, अपने आपको व्यापक बनाने के लिए ध्यान नहीं दे रहा है। अब भी उसी भावना के साथ उन्हीं रूढ़ियों में बंधे रहना है या अपनी आत्मा की भावना को साथ लेकर एकत्व भावना के साथ आगे बढ़ना है ? यह सारा चिंतन जयपुर की जनता को करना है। जयपुर की जनता को ही नहीं अपितु संपूर्ण मानव समाज को इस विषय में गहरा चिन्तन करना है। मैं माध्यम बन रहा हूं। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बातें बतला रहा हूं। लेकिन मैं जो बतलाता हूं वही आप ग्रहण कर लें उसी को आप मान लें यह मेरा आग्रह नहीं है। मैं जो कुछ बातें कहता हूं उन बातों को आप समझने की कोशिश करें। यदि आपको सत्य, तथ्यात्मक लगें, आपको सही चीज मालूम हो, यदि आपके जीवन के लिए हितावह हो, तो ग्रहण करें। मैं किसी के ऊपर थोपने की स्थिति में नहीं हूं। हां, यदि किसी को मेरे विचारों को समझने में भ्रांति हो जाय तो उस भ्रांति को निकालने के लिए हर व्यक्ति के लिए दरवाजा खुला है। वे दिन कोई भी पूछ सकते हैं कि ये विचार आपने किस रूप में कहे हैं ? इसका क्या तात्पर्य है ? इसके लिए मैं सदैव तत्पर हूं। लेकिन आज जिस स्थिति में आप लोगों का, एक प्रकाश प्राप्त करना है और [illegible] समतापूर्ण स्थिति के साथ यदि कुछ कार्य प्रारम्भ [illegible] हैं तो आप जो समाजवाद की, चाहे राजनैतिक क्षेत्र में [illegible] उसमें भिन्न-भिन्न बातें भी चलती हैं, उन कमियों

विचार करते हुए उसके अन्दर आध्यात्मिक भावना का पुट देना है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसका समन्वय करते हुए आप, समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर अपने जीवन की गुत्थियो को सुलझाने की कोशिश करे और जो रूढिगत परम्पराएँ है जिनके अन्दर मानव घुट रहा है। उनके कुछ परिष्कार का प्रयास करें। आज मध्यम वर्ग की कैसी दुर्दशा है ? मानव कुछ समझ नहीं पा रहा है कि वह क्या करे ? जिसके पास कुछ अधिक पैसा इकट्ठा हो गया है, वे अपने आप मे फूले नहीं समा रहे है और अपने आपको समझ रहे है कि वे तो सब कुछ बन गए, लेकिन जिनके पास इसकी कमी है वे मन मसोस कर बैठे हैं। आज इस विषमता की खाई को पाटने के लिए समता सिद्धान्त दर्शन की नितान्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने विषम जीवन को समरूप में देख सके।

जीवन की भूमि को सम बनाओ

यह चातुर्मास का समय है और चातुर्मास की दृष्टि से सतो का आगमन हुआ है। इन सतो के आगमन और इस चातुर्मास के प्रसग में आप आध्यात्मिक क्षेत्र मे और जीवन के क्षेत्र मे एक दृष्टि से कृषक बन जायँ। यद्यपि भारत देश कृषि प्रधान देश है, जन-सख्या की दृष्टि से यहाँ किसान अधिक है। ये किसान खेती करने के लिए हल हाककर जमीन के अन्दर बीज डालकर खेती करते है और उनके आधार पर जनता का जीवन चलता है। मै यह चाहूगा कि आप भी एक तरह से कृपक बने। आप सोचेंगे कि क्या इस शहर के अन्दर हमसे खेती करायेंगे, हल चलायेगे । मै कहूगा कि वह हल तो आपके अन्य बन्धु हाकते ही हैं। आप उस हल को न हाके लेकिन जीवन के अन्दर हल हाकिए, अपने जीवन को देखिए कि हमारे मन मे, हमारे दिल और दिमाग मे, कौन सी घास पैदा हो रही है ? किसान खेती करने लगता है तो

पहले खेत को साफ करना है, उसके अन्दर कंकर पत्थर रह जायेंगे तो खेती ठीक से नहीं हो पायेगी। इसलिए बीज बोने से पहले किसान खेत को साफ करता है, कंकर पत्थरों को बाहर निकालता है और खेत को समभाव से समतल करता है। आपने कभी किसानों को देखा होगा कि किस प्रकार खेतों को साफ करके बीज बोते हैं, और बीज बोने के साथ ही वे निश्चित नहीं हो जाते हैं। लेकिन उसमें यदि कचरा उत्पन्न हो जाए तो उसको भी निकालने का प्रयास करते हैं और तभी जा करके वे समय के बाद फसल की प्राप्ति करते हैं। वैसे ही जीवन की खेती का प्रसंग है। अपने जीवन की खेती को पकाने के लिए इस चातुर्मास के प्रारम्भ में प्रत्येक मनुष्य अपने मन मस्तिष्क में जो विषमताओं के कंकर-पत्थर पड़े हुए हैं उनको बाहर निकालें, उनको फेंक दें और कचरों को फेंकने के बाद फिर आगे समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर वीतराग वाणी का श्रवण करें और उसके साथ जो अपने लिए हितावह हो उसका ग्रहण करें और जो विषम भावना है उसको छोड़ दें। जीवन की अन्तर हृदय की भूमि जब सम होगी, स्वच्छ होगी तभी उसमें सम की, आत्मिक सुख की फसल पकेगी। इस दृष्टि से यदि मानव मन और समता सिद्धान्त दर्शन को जीवन में अपनाते हुए, इस लक्ष्य को अपने सम्मुख रखें तो यह चातुर्मास सारे मानव समुदाय के लिए आदर्श उपस्थित कर सकता है।

प्रत्येक मानव के लिए भी हितकर है, इसी दृष्टिकोण से मैं यहाँ कह रहा हू, इसमे किसी व्यक्ति विशेष या किसी पार्टी विशेष का प्रसग नही है। मै तो यह चाहता हू कि व्यक्ति-व्यक्ति मे जो विषमताएँ है वे दूर हो,व्यक्ति,पार्टी,जाति सब एकरूप होकर मानव के कल्याणार्थ कार्य करे और इस प्रकार आगे बढते हुए स्व-पर के जीवन को पबित्र बनावे।

सामाजिक कुरीतियो के कारण अगर कोई विषम परिस्थिति आ गई है, भेदभाव की कोई दिवाल खडी हो गई है, कोई पोइन्ट खडा हो गया है तो उसको निकालने की कोशिश करे। उस विषमता को निकालने से आपका जीवन कितना आनन्द और उल्लासमय हो सकेगा यह तो अनुभव की बात होगी।

जीवन में भी एक धरातल बनाइए

चातुर्मास मे इस जोवन के समता धरातल के विषय मे चिन्तन करना है कि आपने यह लाल भवन बनाया। यह पहले कैसा था और अव किस रूप मे हो गया। एक सरीखा हो गया। अब आप सवके सब एक धरातल पर बैठे हुए है। नीचे एक भी ककर चुभ नही रहा है। ककर चुभ रहा है क्या? कोई आपको कष्ट नही हो रहा है। उसी तरह से आप समाज के अन्दर भी एक धरातल वनाइये। आप अपनी स्थिति मे रहते हुए एक ऐसा रगमच तैयार करे जीवन की खेती ऐसी तैयार करे जिसके अन्दर समता सिद्धान्त का एक ऐसा प्लेटफार्म बने। आप स्वय ही उसमे न वैठे, उसमे अग्रवाल, ओसवाल और माहेश्वरी ही न बैठे, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही न वैठे, लेकिन उसके ऊपर पूरी मानव समाज का अधिकार हो, और सभी मानव उसके ऊपर शाति की सास ले सके, पूरे मानव वर्ग को शान्ति का अनुभव हो सके, पूरी मानवता जहाँ से यह सीख सके कि वर्तमान जीवन कैसे जीये और भावी जीवन का उज्ज्वल लक्ष्य कैसे रख सके? इन सव वातो का दृष्टिकोण सामने रखकर इस जीवन के क्षेत्र को समता सिद्धान्त का धरातल

तैयार कर समरूप बना देने का प्रयास किया गया तो जयपुर चातुर्मास का यह प्रकाश दूर-दूर तक प्रकाश फैलेगा। हवाई जहाज आकाश में उड़ता है लेकिन वहां पर बड़ा स्टेशन है, इसका यात्री को पता कैसे लगता है? यह तो आप जानते हैं। कुछ प्रकाश की लाइट पड़ती है तो आप देख लेते हैं कि बड़ा स्टेशन आ गया। यह राजधानी का बड़ा स्टेशन है। इस स्टेशन की तरफ राजस्थान का ही ध्यान नहीं है, मैं सोचता हूं कि दूर-दूर के क्षेत्रों का ध्यान लगा हुआ है, और इसकी चमचमाती हुई रोशनी देखने के लिए कई तैयार हो रहे हैं। अगर राजधानी के अन्दर कोई ऐसा आदर्श और पवित्र कार्य जैन समाज को आह्लादित करने वाला हो और पवित्र समता सिद्धान्त का धरातल मानव मात्र के विकास का कारण बनता हो तो इस प्रकाश को लेने के लिए सब तैयार बैठे हुए हैं। यहां की सुगन्ध दूर दूर तक फैल सके यह उत्तरदायित्व जयपुर की जनता पर है। अगर जयपुर की जनता में जो पूर्वग्रहीत आग्रह की कोई भावना

जाना कहा है ? हमे छोटी-छोटी बातो मे न उलझ कर भगवान के तुल्य बनने की कोशिश करना है। उदाहरण के तौर पर किसी को कलकत्ते जाना है, वह जौहरीबाजार से निकलता है, जौहरी बाजार के अन्दर कोई व्यक्ति आकर उससे लडने की कोशिश करे कि कहाँ जाते ही मैं इतना मजमा खडा कर दूँगा, मैं यह कर दूँगा वह कर दूँगा उस समय वह कलकत्ते जाने वाला सोचेगा कि इस भाई का उत्तर दूँगा इससे कुछ प्रत्यालाप करूँगा तो रेल का टाइम चूक जाऊँगा और समय पर कलकत्ते नही पहुच पाऊगा, तो उस वक्त वह जौहरी बाजार के अन्दर उस व्यक्ति से लडने के लिए खडा रहेगा या मजमे की बात करेगा या तनातनी की बात करेगा या चुपचाप निकलकर चला जायगा ? गाडी के समय को समझने वाला, कलकत्ते टाइम से पहुचने की इच्छा रखने वाला आदमी, उस व्यक्ति से लडने की कोशिश नही करेगा। उसी तरह से हमारा परम लक्ष्य वहा जाना है और काफी दूरी तय करके जाना है तो, जो जीवन के क्षेत्र मे कोई जौहरी बाजार वाली बाधाएँ खडी करदे और गलत वायुमण्डल तैयार करने की कोशिश करे तो, मैं सोचता हूँ कि उनकी तरफ ख्याल नही करते हुए अपने जीवन की मन्जिल पर मुस्तैदी से आगे बढते हुए अपूर्व आदर्श उपस्थित करने का प्रयत्न होना चाहिए।

आप इस बात को ध्यान मे रखेगे कि समता-सिद्धान्त दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन और समता परमात्म दर्शन इन चार बातो का उद्देश्य जीवन की कला है, जीवन का परम अनुसन्धान है। आप यदि इन बातो का गहराई से चिंतन मनन करेगे, समता को जीवन मे उतारने का प्रयत्न करेगे—तो जीवन के दुःख वैषम्य और विपदाएँ अवश्य ही दूर होगे और आत्मा परमात्मा की स्थिति तक पहुँच सकेगा।

लाल भवन, २० जुलाई १९७२

●●

ज्ञान मनुष्य का

तीसरा नेत्र है।

उस ज्ञान नेत्र को

जागृत करते सद्गुरुदेव

आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

के

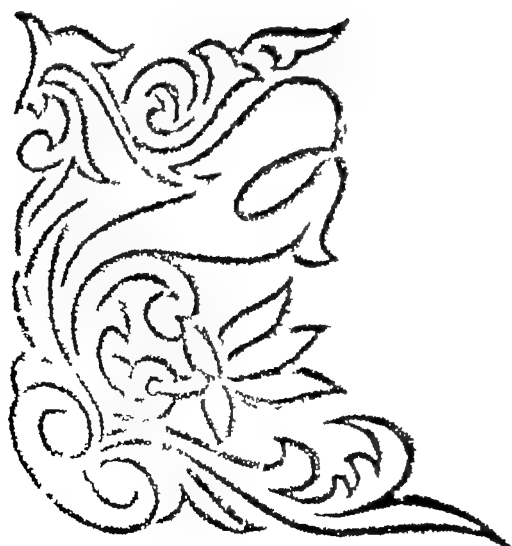
चरणों में कोटिशः अभिवन्दन।



सुन्दरलाल तातेड़

दमानियों का चौक,

बीकानेर



असंखयं जीविय मा पमायए

—उत्तराध्ययन ४।१

जीवन धागा असंस्कृत है, टूटने के बाद पुनः सांधा नहीं जा सकता, अतः प्रमाद मत करो।

---

२ | संस्कारित जीवन

सुमति जिनेश्वर साहिबा जी
        मेघरथ नृपनो नन्द!
सुमंगला माता तणो जी!
        तनय सदा सुखकन्द!
        प्रभु त्रिभुवन तिलोजी!
        सुमति सुमति दातार
महा महिमा निलोजी!
        प्रणमु बार हजार
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी!

को पुकारा जा सकता है। उनमे से एक सुमतिनाथ भी है। सुमति का अर्थ है—सद्‌बुद्धि!

जिनकी सन्‌मति होती है, जिनका ज्ञान सम्यग् होता है, पवित्र अध्यवसाय जिनकी आत्मा के अन्दर चलता है—वे सुमति कहे जा सकते है। लेकिन ऐसी सुमति रखने वाले जो समस्त प्राणियो के स्वामी के रूप मे प्रसिद्ध है, वे सुमतिनाथ कहलाते है। यहा सुमति नाथ भगवान् के चरणो मे कवि ने प्रार्थना के रूप मे सकेत किया है और यह बताया है कि सुमतिनाथ सुमति के दाता है।

सुमति के दाता दयालु कहलाने है। वे सुमति का दान भी करते है। आज सुमलि के लेने वाले व्यक्तियो की कमी नही है? आज देखा जाय तो ससार के अन्दर जितने प्राणी है उन सब प्राणियो को सुमति की आवश्यकता है। प्राणी जब सुमति को छोड कर कुमति के अधीन होता है तब वह अपने आपको खतरे मे डालता है। उसका परिवार मे सम्मान नही रहता है। वह समाज मे भी विषमता पैदा करता है और राष्ट्र के अन्दर भी वह बहुत भयावह दृश्य उपस्थित कर देता है। यह कुमति का कार्य है। इस कुमति के कारण से ही ससार तबाह हो रहा है। इसलिए ऐसे प्रसग मे सुमतिनाथ भगवान् की वह दातार वृत्ति, वह उदार वृत्ति आवश्यक है। लेकिन सुमतिनाथ भगवान सुमति देगे किसको? सुमति लेने वाले व्यक्तियो को, जिज्ञासु व्यक्तियो को, किन्तु कब? जब वे उस रूप मे उपस्थित हो। दातार अपनी उदारता से कुछ देना चाहता है लेकिन लेने वाला भी तो चाहिये। लेने वाला इन्सान यदि तैयार हो जाता है, तो दातार अपनी उदारता के साथ दे भी सकता है। प्रश्न होगा, महाराज! लेने वालो की कमी नही है। प्रार्थना हम कर ही रहे हैं। आपने जिन शब्दो का उच्चारण किया, जिन प्रार्थना की कडियो के साथ आपका सम्बन्ध जुडा है, उनके साथ हमारा भी सम्बन्ध रहा हुआ है। हम इसी के लिए यहा आये हैं कि हम यहा भगवान की वाणी का श्रवण

वाणी के प्रसग से आपके सामनेविचार रखे है, उनके रखने का प्रसग भी है। जिस समय जम्बूस्वामी सुधर्मा स्वामी के पास पहुँचे उस समय जम्बू स्वामी के मन मे प्रबल जिज्ञासा हुई—मैं भी सुमति प्राप्त करू। इस ससार मे रहते हुए कुमति के चक्र मे अनादिकाल से महा दु ख और झझावतो मे जीवन विताया, लेकिन अब शान्ति की स्थिति मे पहुचा हू। सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को उपदेश दिया और जिस तत्व का सुमति के साथ सम्बन्ध जुडता है उसका सकेत देते हुए कहा—

उस समय भगवान महावीर राजगिरि पधारे, राजगिरि नगरी मे ऋद्धि सिद्धि की प्रचुरता थी।" उस नगरी मे मानव की सुमति का भली-भाति विकास करने के लिए उन्होने सुधर्मा स्वामी को जो वाते वतलाई उन ही वातो को सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के सम्मुख प्रकट कर रहे है। वे वाते हमारे सामने भी शास्त्र के माध्यम से आ रही है। हम सुमति के द्वारा शाति का अनुभव करे और परलोक उज्ज्वल वना सकें—इस बात का प्रसग लम्बे चौड़े विस्तार के साथ या सूक्ष्मता से जो भी मिले वह श्रवण करे। वह श्रवण कहा से करेगे ? किस रूप मे करेगे ? सुमति के साथ श्रवण करे तो वह श्रवण सुखकारी होगा। वह जीवन मे विवेक शक्ति पैदा करेगा। यदि सुमति को हटाया और कुमति के साथ श्रवण किया तो कुमति मे जो चीज आयेगी वह कुमति रूप मे ही परिणत होती हुई चली जायेगी। आपको मालूम है, घासलेट का तेल जिस वर्तन में हो, उस वर्तन मे यदि वढिया से वढिया घी भी डाल दिया जाय तो उस घी की क्या दशा होगी ? घी को चखे तो कैसा लगेगा ? सुगन्ध कैसी हो जायेगी ? सारी की सारी घासलेट मे परिणत हो जायेगी।

संस्कारित जीवन

जिस मानव के मस्तिष्क मे सुमति का सुन्दर सरोवर लहलहा

रहा है, उसमे वीतराग धर्म की वाणी का श्रवण हुआ तो वह सारा घा सारा अमृतमय हो जायेगा। उसे अमृतमय बनाने के लिए हम अपने जीवन को टटोलें। भगवान ने निर्देश दिया है कि हे मानव! अपने जीवन को देख यह जीवन सस्कार हीन बन रहा है—"असंखयं जीविय मा पमायए" यह भगवान महावीर को उद्बोधना प्रत्येक मानव के लिए है, और उसमे कहा गया है कि हे मानव! तुम्हारे जीवन के अन्दर सुमति के सस्कार नही हैं, तुम्हारा जीवन असंस्कारित है, असस्कारित जीवन मे किसी तत्व को डाल दोगे तो उसका संस्कार नही हो पायेगा, उसका दुरुपयोग होगा। अपरिपक्व घड़े मे यदि अमृत डाल दोगे तो घडा भी चला जायेगा और अमृत भी। आपको अगर सस्कारित जीवन बनाना है तो सुमति को जागृत कीजिये, सुमति के बिना सस्कारित जीवन नही बन सकता है। कुमति का जीवन असस्कारित जीवन है, अज्ञान का जीवन है। आप देख रहे हैं, एक बच्चे के सामने बहुमूल्य रत्न रख दीजिये। आप अपनी अगूठी का तीन लाख या पाच लाख का हीरा रख दीजिये। वह बच्चा उस हीरे की कीमत क्या करेगा? वह बच्चा उस हीरे को समझेगा? वह बच्चा उस हीरे को यत्न से रखने का प्रयत्न करेगा? नही! वह तो उसे उठाकर फेंक देगा। बच्चे के जीवन मे हीरे की पहचान का सस्कार नही है इसलिए वह बच्चा उस ज्ञान के अभाव मे, प्रारभिक स्थिति मे असस्कारित होने के कारण हीरे के विषय मे कुछ नही जान पा रहा है।

करते है। कभी-कभी मुखवस्त्रिका तक उठा ले जाते है, कभी-कभी वस्त्र उठाकर ले जाते है। उन वस्त्रो को वे समझते नही है कि वे कैसे वस्त्र है और उन वस्त्रो की चिन्दी-चिन्दी करके, उनको वता-बताकर फाड डालते है। सिर्फ किसलिए ? रोटी के टुकडे के लिए और आप उनको रोटी डाल देते है तो आपकी जिन्स वे छोड देगे। और नही देगे तो वे उन वस्त्रो को वता-बताकर फाडेगे। आप सोचिये की आप जैसे कपडो की कद्र कर रहे है, आप जिन वस्तुओ के पीछे बहुत मुग्ध हो रहे है उन्ही वस्तुओ को ले जाकर वे उनका दुरुपयोग करते है। आप कहेगे महाराज वन्दर जाति है। उसकी चेष्टा तो करीब-करीव मनुष्यो जैसी है लेकिन फिर भी मनुष्यो जैसे सस्कार नही है। उनका असस्कारित जीवन है। आप वन्दरो के जीवन को असस्कारित जीवन कहेगे और सस्कारित जीवन को आप मनुष्य जीवन कहेगे। बन्धुओ ! सोचने की वात है। आज सस्कारित और असस्कारित जीवन का वडा प्रश्न है। जो मनुष्य जीवन जी रहा है लेकिन जीवन कैसा जी रहा है ? "**किं जीवनम्**" जीवन कैसा है ? और क्या है, आज यह प्रश्नवाचक चिह्न ससार के सामने मु ह बाये खडा है। जीवन का जब यह प्रश्न खडा होता है और सुलझता नही तब तक मनुष्य का जीवन जीवन नही कहला सकता। जीवन एक दृष्टि से देखा जाये तो मशीनरी की तरह चलता जा रहा है। मशीन को तो फिर भी कुछ समय के लिए छुट्टी मिल जाती है, मशीन हफ्ते मे एक रोज तो विश्राम लेती होगी लेकिन मानव जीवन की मशीनरी तो हफ्ते मे एक दिन भी विश्राम लेती है या नही ? सरकार के डडे से चाहे व्यापार का लेनदेन बन्द कर दिया जाता होगा लेकिन उस दिन बन्द करने के बावजूद भी अनुमानत दूसरे दिन अधिक भार आता होगा। मैं अनुमानत शब्द इसलिए कह रहा हू कि कुछ लोगो के शब्द मेरे कान मे आते है। मैं कहता हू कि रविवार को तो छुट्टी रहती है तो वे कहते है महाराज, रविवार

स्थिति नही, वहाँ जीवन की यही स्थिति है। आज आप प्रत्येक जीवन तत्व का चिन्तन कीजिए, जीवन के विषय मे मैं कह रहा हू। इसके साथ ही साथ आप ससार मे जिन पदार्थो का अवलोकन करते है उनमे भी सस्कारित और असस्कारित दोनो तरह के पदार्थ पाये जाते है। जो सस्कारित पदार्थ है उनका जरूर महत्व है, पर जो असस्कारित पदार्थ है उनका कोई महत्व नही।

आप कभी-कभी अपनी दृष्टि मे विवाह शादियो के प्रसग पर इन बहिनो के सिर पर मिट्टी के कलशो को देखते होगे। सम्भव है वडे शहरो के अन्दर नही हो लेकिन विवाह शादियो से प्रसगो पर घडे पर घडा रख कर उसके गले मे जेवर पहनाया जाता है। यहाँ शायद यह प्रथा नही होगी। यह प्रथा कम हो रही है, लेकिन गॉवो के अन्दर देखने को मिलता है कि वहिने विवाहो के प्रसग पर सुन्दर वस्त्र पहन कर, जेवर पहन कर गीत गाती हुई कुम्भकार के यहाँ पहुचती है और कलशो को लाती है, बडे और छोटे एक के ऊपर एक कलश चढाकर अपने जेवर उन घडो के गले मे डालती हैं। मेवाड के गाँवों मे आपको यह देखने को मिलेगा। वह फिर वड़े यत्न से चलती है, शायद उपवास करके उतने जतन से नही चलती होगी। जितनी वहाॅ जतन से चलती है। उनका ख्याल रहता है कि यह घडा कही गिर नही जाये। सावधानी के साथ मन को एकाग्र करके चलती है और जव विवाह के मकान के दरवाजे पर जाती है तो यहाँ दूसरी बहने फिर उनका सत्कार करके आरती करके दरवाजे से ले जाकर अन्दर रखती है। बन्धुओ, इस प्रक्रिया को आप देख चुके होगे। नही देखा हो तो आप मस्तिष्क मे ले लीजिए आप सोचिये यह किसकी कद्र हो रही है। वहिनो के सिरो पर मिट्टी क्यो चढे ? इन वहिनो को यदि कहा जाये इन विवाह शादियो के प्रसग पर कि आप जगल के अन्दर से एक मिट्टी का ढेला उठाकर अपने सिर पर रखकर चलिये। चलेगी वे ?

संस्कारित बनने के लिए सहिष्णु बनो !

आज इन्सान अपने मन मे क्या अभिलाषा रखता है ? यह कि मै दुनियाँ का मान-सम्मान ग्रहण करूँ, दुनियाँ के सिर पर चढ कर दुनिया का वदनीय और पूजनीय बनू । अरे तू आदर और सत्कार के पीछे दीवाना बन रहा है, मान-सम्मान लेने के पीछे भाग रहा है। तू अपने जीवन को देख, तुम्हारा जीवन क्या है, तू मिट्टी के ढेले की तरह है या मिट्टी के घडे की तरह है ? मिट्टी के ढेले ने तो मान सम्मान की परवाह नही की। मिट्टी के मन मे तो यह ध्यान रहा कि मुझे सस्कारित बनना है। संस्कारित बनने मे वह अनेक आपत्तियो को सहकर चली तो मिट्टी का सस्कार हो गया। यदि इन्सान को अपना जीवन जीना है, जीवन के प्रश्न को हल करना है कि मेरा जीवन क्या है ? तो सबसे पहले उसे मिट्टी से शिक्षा लेनी चाहिए कि मिटटी के समान मै निश्चिल, दृढ धैर्यवान बन जाऊ। मिट्टी पर कुम्हार ने थपेडे लगाये, मुझ पर भी थपेडे लगाने वाला कोई आ जाय तो उस समय मै शान्त एव स्थिर रहता हू या नही ? आत्मस्वरूप मे लीन होता हू या आत्मा के रूप को विस्मृत कर जाता हू। मै शान्ति को छोडता हू या रखता हू ? यह प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन करना है। यह चिन्तन नही होगा तब तक जीवन सस्कारित नही हो पायेगा । अरे थपेडे खाना तो दूर रहा, यदि कोई व्यक्ति दूर पडे खडे अगुली उठाकर कह दे, मेरे सामने क्या बोल रहा है, तुम्हारी मूछ का बाल उखाड कर फेंक दूगा। इतने शब्द ही उस व्यक्ति को उत्तेजित किये बिना नही रहेंगे। और वह व्यक्ति इतना उत्तेजित हो जाता है, कथन मात्र से ही [illegible] आदि को छोड देता है और मानवता को तिलाजलि देकर मुठभेडबाजी के लिए तैयार हो जाता है। हालांकि न उसने मूछ के बाल पर हाथ लगाया, न उखाडी, फिर भी उसे जोश आ गया।

परमाणु वही थे। चीज वही थी। लेकिन उनका सस्कार हो गया। यहाँ छाया मे बैठे हुए है टीन की, यह टीन कहा से आई ? लोहे से। यह टीन सस्कारित बनी लोहे के ढेले से। लोहे के पत्थर का भिलाई के पास बहुत बडा पहाड खडा हुआ है जिस पर लोग टट्टी-पेशाब करते है। वह लोहे का पत्थर निकलकर भिलाई की भट्टियो मे पहुचा। भट्टियो मे पहुच कर उसने सस्कार ग्रहण किया, टीन के रूप मे परिवर्तित हुआ और मनुष्य को छाया देने वाला बन गया। वाह रे लोहे। तू सस्कारित होकर दुनिया को छाया देवे, शान्ति देवे लेकिन मानव नाम धारण करने वाला मनुष्य—वह अपने आपको मानव कहलाते हुए दुनिया को शान्ति देता है या अशान्ति देता है, दुनिया के लिए फूल बनता है या दुनिया के लिए शूल बनता है—क्या मानव ने अपने जीवन मे यह सोचा है ? मै आपको इस विषय मे क्या बताऊँ,प्रभु महावीर ने कहा है—सस्कारित जीवन जिस मानव का, बहिन या पुरुष का बन जाता है, उसका जीवन बदल जाता है, जिसका जीवन सस्कारित नही होता है वह चाहे जितनी अवस्था या स्थिति प्राप्त कर ले उसके जीवन मे वह दूसरो के साथ भलाई करने वाला व्यक्ति नही बनता। एक अस्सी वर्ष की बुढिया, पैसे की दृष्टि से करोडपति की माता है, लेकिन जीवन की दृष्टि से वह मिट्टी के ढेले से भी गई बीती है। रात और दिन सघर्ष, हाय-हाय। परिवार के सदस्यो मे महाभारत का दृश्य उपस्थित करने वाली। सेठ ने चिंतन किया कि मुझे जीवन के सस्कार मिले है, मै यद्यपि इसी माता की कुक्षी से जन्म लेकर आया हू, फिर भी मै कुछ जीवन के स्वरूप को समझने लगा हू। लेकिन मेरी माता अभी तक जीवन को नहीं समझ पा रही है कि जीवन का क्या मूल्य है। रात और दिन परिवार के सदस्यो को तग कर रही है। घर के अन्दर अशान्ति की ज्वाला सुलग रही है। इस माता का जीवन सस्कारित कैसे बने। पुत्र ने विनीत भाव से माता के चरणो मे नमन करते हुए निवेदन किया, मातेश्वरी ! तू मेरी जननी है। दुनिया मे कहावत है, **जननी**

जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर है। मैं तुम्हारी उसी तरह कद्र करता हू। लेकिन तुम्हारा जीवन असंस्कारित जीवन चल रहा है। अस्सी वर्ष की हो गई हो लेकिन जीवन मे परिवर्तन नही है। वही पशुपन है, अनाड़ीपन है। यह कौन सा तुम्हारा जीवन है। मातेश्वरी! अपने जीवन को संस्कारित करो। अस्सी वर्ष मे जो कार्य किया, उससे निवृत्ति लो और जीवन को मांजने के लिए, सन्मार्ग की ओर जाने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित रूप मे ढालो। पुत्र का निवेदन सुनने के पश्चात माता कहने लगी, छोकरा! तू नही समझता। मैंने गरीबी के दिन भी देखे हैं। आज तू करोडपति वन गया तो क्या हो गया! यह पुत्र वधू इस प्रकार की फिजूलखर्ची करती है, यह छोकरे इस प्रकार पैसे बर्बाद करते हैं—यह मुझे बर्दाश्त नही। इसलिए मैं लड़े बिना नहीं रह सकती। पुत्र ने कहा, जैसा करोगी वैसा भरोगी। पुत्र की बात मातेश्वरी ने स्वीकार नही की। तब सेठ ने सोचा, इसके जीवन से अब यह संस्कार जाने वाले नही है लेकिन जिनके कोमल जीवन हैं, जो अभी बच्चे है, जो तरुण हैं, जो अधेड है उनमे फिर भी अच्छे संस्कार उत्पन्न किये जा सकते है। इसलिए परिवार के सब सदस्यों को एकत्रित करके सेठ ने नम्र भाव के साथ निवेदन किया—आप मेरे परिवार के सदस्य है। मेरी आत्मा के तुल्य हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ, आप अपने जीवन को समझें। यह जीवन असंस्कारित जीवन रहता है तो मुझे दर्द होता है। आप अपने जीवन को संस्कारित बनाने के लिए कुछ प्रण करे। विनीत परिवार के सदस्यों ने सेठ की बात को ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् कहा, आप क्या आदेश देना चाहते है? आपके आदेश का पालन करना हमारा कर्तव्य होगा। सेठ ने कहा, यह मेरी माता अस्सी वर्ष की हो गई है। अपने सब परिवार की मुखिया है। लेकिन इसके जीवन

मे जीवन के अच्छे सस्कार नही है, यह हर किसी के साथ लडती झगडती है। आप लोग इसके ऊपर रोष न करे, इसकी बात पर ध्यान नही दे। बूढे और वच्चे को एक समझ कर माफ करे जिससे घर मे कलह का वातावरण पैदा नही हो। सव परिवार के सदस्यो ने अनुशासन के नाते यह स्वीकार किया और घर मे शान्ति का वातावरण वन गया। लेकिन वुढिया का असस्कारित जोवन समाप्त नही हुआ। उसने सोचा, परिवार के सदस्य मेरे से लडाई नही करते। मुझे लडाई किये बिना चैन नही मिलता। वह घर से वाहर निकली,पडौसी के घर पहुची। वहा अपने असस्कारित जीवन का प्रदर्शन किया। उसकी वातो को सुनकर पडौसी के परिवार के सदस्य लडने लगे। एक घर मे आग लगाई, फिर दूसरे घर मे पहुची। दिन मे कई धरो मे पहुँच कर सव के यहाँ लडाई झगडे करा दिये। और शाम को अपने घर मे वापिस पहुँच गई। यह उसका प्रति दिन का कार्यक्रम वन गया। असस्कारित जीवन का कितना खराव प्रदर्शन है। नागरिक परेशान हो गये। यह क्या तमाशा है। यह माता करोडपति की कहलाती है। उनके घर की माता है। हमारे घर मे आग लगाने वाली कौन होती है? आग लगाने वाला व्यक्ति वहुत वडा पापी होता है। वाहर मे आग नही, जीवन मे आग जलाने वाला, जीवन मे क्लेश पैदा करने वाला समाज के अन्दर शाति की स्थिति को तोडने वाला, अशाति पैदा करने वाला, राष्ट्र के अन्दर अशाति की ज्वाला सुलगाने वाला—ये सवके सव महापापियो की श्रेणी मे आ सकते है।

नागरिको का शिष्टमडल सेठ के पास पहुचा। सेठ ने वडा सत्कार किया। शिष्टमण्डल सोच रहा था कि यह करोडपति सेठ है, हमे अनादर की दृष्टि से देखेगा। लेकिन सेठ के वर्ताव को बिल्कुल विपरीत पा रहे है। सेठ सम्मान कर रहा है हमारे जैसे

का कुछ हल आ चुका है। आपके घर के अन्दर काफी सदस्य है, एक एक सदस्य की बारी बाध दी जावे, एक कमरे के अन्दर गादी तकिये डालकर बुढिया को बिठा दीजिए, यह आपके घर की अशान्ति एक ही कमरे मे रहेगी और सारे नगर मे अशान्ति भी नही रहेगी ' सेठ ने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरे परिवार के सदस्यो से यह समस्या हल होने वाली नही है। शिष्ट मण्डल ने कहा कि क्यो ? तो कहा—परिवार के सदस्यो को मैने सस्कार दे दिये है कि बुढिया चाहे कितना ही कुछ कहे तुमको चुप्पी साध लेनी है और कुछ भी उत्तर नही देना है। जैसे बच्चे की बात को सुनकर हसना है उसी तरह से बुढिया की बात को सुनकर हस लेना है। अत मेरे परिवार के सदस्य उससे लड़ाई नही करेगे उसकी वात को सुनकर हसते रहेगे। तो इससे बुढिया की आग शान्त नही होगी और फिर कमरे से बाहर निकलकर आपके घरो मे पहुचेगी तो आपकी समस्या का हल कैसे होगा। शिष्ट मडल ने सोचा यह भी ठीक है। सेठ के इस प्रकार सस्कारित जीवन का कुछ नमूना देखकर शिष्ट मण्डल ने सोच लिया कि यह सारे नगर की माता हो जानी चाहिए क्योकि इसके पुत्र के इतने सस्कार है कि हमारे साथ सुमति के साथ व्यवहार कर रहा है तो यह उत्तरदायित्व हम सबका है। इस दृष्टिकोण से उस शिष्टमण्डल ने यह निर्णय किया कि सेठ के घर के सदस्यो को छोडकर गाव के जितने सदस्य है उनके प्रत्येक घर से एक व्यक्ति की वारी बाँध दी जाये। उन्होने गाव के अन्दर उसी ढग का ऐलान करवाया। वह गाँव विषमताओ की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला नही था। वह परिवार के रूप मे गाव था, सब की समता की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला गाव था। आजकल ग्राम पचायतो की व्यवस्था करने के लिए जरूर कुछ किया जा रहा है लेकिन आज की स्थिति मे वस्तुत. ग्राम को परिवार समझने की दृष्टि अभी मानव

आपको मन को जो कि कोमल कमल के समान है मुरझा गया। आप स्पष्ट कहे मेरे से बन सकेगा तो मैं उसमे भाग लूगी। सासु जी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा और सारा वृत्तान्त सुनाया कि करोडपति सेठ के यहा इस तरह से असस्कारित वृद्धा माता का गाव के लोगो के साथ व्यवहार है और व॒ा बारी बारी से प्रत्येक परिवार से एक एक सदस्य रोज जाने का निर्णय हुआ है मेरे घर के सदस्य के जाने का आज प्रसग है और यह सदस्य पहुचा तो वह बुढिया चाहे वह ८० वर्ष की है लेकिन उसका जीवन मिट्टी के ढेले से भी गया बीता है और इतने अपशब्द वह परिवार के लिए प्रयोग करेगी कि जो कम से कम आज हमको अभीष्ट नही है। हम चाहते है कि आज तुम्हारी सरीखी सस्कारित कन्या हमारे परिवार मे आई यह हमारे परिवार के लिए मगलमय प्रसग है अत हमारे परिवार के लिए अमगल सूचक शब्दो का प्रयोग नही हो इस भावना से मेरे मन मे ग्लानि आ रही है कि मैं क्या करू ँ। इस बात को सुनकर वह कन्या जो नवीन पुत्रवधू के रूप मे परिवार मे उपस्थित हुई, उसके जीवन के अन्दर उच्च जीवन के सस्कार थे। अपने जीवन को माजने की दृष्टि से वह चल रही थी और सुमति की पाठशाला मे भी वह प्रवेश पा चुकी थी इसलिए उस कन्या ने प्रफुल्लित नैनो के साथ मधुर स्वर मे कहा सासुजी, यह कार्य जितना आपका है उतना ही मेरा भी है, आप चिन्ता मत कीजिए। मेरे लिए आप मगल कामना करती है यह मेरे सौभाग्य की बात है लेकिन मेरा मगल मेरे हाथ मे है, मैं अपने जीवन मे सुमति और सुमति के साथ जीवन के सस्कारो को लेकर चल रही हू इसलिए मेरा कोई अमगल होने वाला नही है—आप इस विषय मे निश्चित रहिये और यदि आपके घर की बारी है तो आज मेरा ही नम्बर लगा दिया जाये। बन्धुओ, मैं क्या बताऊँ—कहाँ एक ८० वर्ष की बुढिया और कहा एक तरुणी जो कि नव पुत्रवधु के रूप मे

विन्नाणेण समागम्म धम्म साहणमिच्छिउं

—उत्तराध्ययन

विवेकज्ञान से ही धर्म के साधनो का निर्णय हो सकता है।

---

३ | जीवन का स्वरूप

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।
जदपि धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ट जमारो।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो।

यह पद्म प्रभु की प्रार्थना है। प्रार्थना की कडियो मे प्रभु के नाम को पावन की सज्ञा दी है। ऐसे तो पद्म नाम कईयो का हो सकता है किन्तु कवि ने जिस सज्ञा वाचक शब्द को कविता मे समन्वित किया है। उसका आशय है कि उनका नाम पावन और पवित्र है, पतितो का उद्धार करने वाला है। पतित कौन है ? कवि



साथ साथ प्रभु का स्मरण हो आता है। विशिष्ट शब्दो के उच्चारण से भगवान का अत्यन्त उज्ज्वल जीवन सामने आता है और उसका जब मन के ऊपर स्पष्ट प्रतिबिम्ब पडने का प्रसग आता है तब मन मे भी पवित्रता का सचार होता है।

हृदय से भगवान का पावन नाम लेते है तो जिह्वा और अत. करण भी पवित्र हो जाते है उस पवित्र नामोच्चारण से मन मे या अन्त.करण पर रहने वाली हमे धुँधुलती हुई परिलक्षित होगी। यह मन रूपी कपडा सासारिक कार्यों से दुर्गन्ध युक्त बना हुआ है। उसमे झूठ, छल, प्रपच और न मालूम कितनी ही बुरी वस्तुएँ क्रीडा कर रही है और सारे मन रूपी कपडे को गदा बना रही है। इस गन्दे कपडे के ऊपर यदि आप पद्म प्रभु भगवान के नाम का पवित्र अर्थ दो क्षण के लिये भी टिका लेगे तो आपके मन मे सुगन्ध रूपी आध्यात्मिक शान्ति का प्रभाव बना रहेगा। जितने क्षण आपका ध्यान प्रभु के सीधे स्वरूप की ओर होगा। तब तक वहाँ बाहरी वस्तुओ का प्रभाव मन्द होगा, कुसस्कार नष्ट हो जायेगे। यह स्थिति निरन्तर मन की बनी रही तो सारी दुर्गन्ध साफ होकर जीवन पावन और पवित्र बन जावेगा।

जो लोग समझते है कि दिन भर पाप करे और शाम को भगवान का नाम ले ले तो पाप से छुट्टी मिल जावेगी। उन लोगो के मन मे ये विचार बैठे हुए है कि शाम को भगवान का नाम लेने से दिन भर के पाप नष्ट हो जावेगे किन्तु ये विचार तथ्यपूर्ण नही है इस प्रकार के विश्वास से जीवन मे पुनीत सस्कारो का आरोपन नही होगा।

हमारा सारा जीवन वीतराग देव की वाणी के अनुसार सुसस्कारित हो यह तभी सम्भव है। उस जीवन को सुसस्कारित करने के लिये हम अपने जीवन के पापो को छिपावे नही। दुर्गन्ध को छिपाने की कोशिश न करे वरन् उसे बाहर फेके। दुर्गन्ध को

सूर्य की किरणो के सामने विखेर दें, दुर्गन्ध उड जावेगी और वस्तु का वास्तविक स्वरूप सामने झलकने लगेगा ।

गंदगी को दबाओ मत

आप जानते हैं, व्योपारी जव अपनी दुकान पर बैठता है और कचरा निकालने का प्रसग आता है तो वह रुपया पैसा नोट और कोई वढिया चीज है तो गद्दी से उनको उठाकर तिजोरी मे रखेगा और कचरे को झाडकर, दुकान से वाहर फेंकेगा । यह तो प्रचलित पद्धति है । लेकिन कदाचित किसी व्यापारी के दिल मे यह आ जाय

कि सोने चांद ... र वाजार मे फेंक

दें और जितन ... करके, या तो गद्दी

के नीचे दव ... दे ऐसा वह करने

लग जाय तो ... वकूफ और मूर्ख

ही तो कहेगे

हम इस ... क्या हमने अपने

जीवन के स्व ... , "किं जीवनम्"

जीवन क्या है ... चिन्तन किया है ?

इस जीवन क ... कचरे को वाहर

फेंक रहे हैं या ... वा रहे हैं ? इसका

तात्पर्य यह है ... गदगी भरी हुई

है । इस गदग ... ता है । नयी नयी

गदगी पैदा ह ... कोशिश करता है

और सद्गुण ... की कोशिश करता

है । जीवन के ... पाप किया और

पाप करना स्वाभाविक भी है । परन्तु पाप करने के वाद मे पाप को पाप कहने की ताकत भी उसकी जवान मे नही आती है । प्रकारान्तर से वह पाप प्रकट भी हो जाय तो भी मनुष्य चा गा कि पाप प्रकट

न हो और इस पाप को छिपा कर तथा दबाकर रखता रहू। ऊपर से केवल ऐसा बता देता है कि दुनिया मुझे भला आदमी समझती रहे। कदाचित् किसी सयोग से अपने जीवन से शुभ काम बन जाता है, मार्ग मे जाते हूए किसी गिरते हुए प्राणी को सहारा देकर बचा लेता है, तो वह मन मे फूला नही समाता है और सारी जगह बात कहता फिरता है कि मैने ऐसा किया, और जिस व्यक्ति को सहारा दिया यदि वह व्यक्ति कभी कोई बात कहे तो वह उलट कर कहेगा कि मैंने तुमको मरते हुए को बचाया था। वह दुनिया भर मे उसका ढिढोरा पीटेगा और इस छोटे से शुभ कर्तव्य से अपनी गदगी को नीचे दबायेगा। इस के विपरीत जो व्यक्ति सद्गुण रूपी शक्तियो को तिजोरी मे बन्द रखता है कूडे कर्कट को बाहर फेक देता है, तथा प्रभु के नाम का श्रवण करता है तो वह नाम उसके जीवन को पावन करने वाला वन जावेगा। यदि ऐसा नही किया तो प्रभु का नाम हजार हजार बार ले, लाखो-करोडो बार ले, वह प्रभु का नाम पवित्र पावन करने वाला नही बनेगा। इन पवित्र कडियो को जीवन के साथ जोडे और जीवन को सामने रखकर इसके स्वरूप को समझने की कोशिश करे तो यह सव सम्भव है।

प्रभु महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले जो उद्घोषण किया वह यही था .

अस खय जीविय मा पमायए।
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण॥

हे मानव ! तुम्हारा जीवन असस्कारित चल रहा है। प्रमाद मे क्यो पडे हो, जीवन को इधर उधर क्यो भटका रहे हो। आप विचार करिये असस्कारित जीवन क्या है हमारा प्रश्न क्या है ? जीवन के साथ सस्कारित और असस्कारित शब्द जुडे हुए है। असस्कारित जीवन की और सस्कारित जीवन की अनेक विद्वान् परिभाषा करते है, जीवन को तोलने की कोशिश

करते हैं लेकिन वास्तव मे जीवन की परिभाषा परिपूर्ण रूप से क्या है ? "किं जीवनम्" जीवन क्या है। कुछ विद्वान् उत्तर देते है कि "दोष विवर्जितम् यद् तज् जीवनम् ।"

दोष से विवर्जित है वही जीवन है। जो दोष से रहित है, वह जीवन है इस सामान्य परिभाषा मे कुछ दार्शनिक दृष्टि से अतिव्याप्ति दोष की सभावना है । यद्यपि अतिव्याप्ति दोष, अव्याप्ति दोष और असभव दोष, ये तीनो न्यायिक क्षेत्र के, दर्शन क्षेत्र के लक्षण हैं। यह दार्शनिक सभा नही है। यह तो धर्म जिज्ञासु सभा है। यद्यपि धर्म सभाओ के वीच मे ये दर्शन सम्वन्धी वाते थोडी कठिन पडती हैं परन्तु फिर भी आज का जो समाज है, आज का जो मानव है वह इस कठिन तत्व को भी ग्रहण करने का प्रयास करता है। आज मनुष्य के मस्तिष्क का विकास इतना हुआ है कि वह वारीक से वारीक चीज को समझने का प्रयास करता है। इसलिये जव तक आप जीवन की वारीकी को न समझेगे तव तक उसके निखालिस रूप को नही समझ पायेंगे।

जीवन का लक्षण

आपका प्रश्न, नही तो मेरा प्रश्न है "किं जीवनम्" जीवन क्या है ? जव इसका लक्षण वताया जावेगा कि अमुक तरह का जीवन अमुक तरह के जीवन का लक्षण है। तो वह लक्षण यदि दोषयुक्त वन गया तो सही लक्षण नही समझा जा सकता। और यदि दोष रहित लक्षण है तो वह सही लक्षण है। उदाहरण स्वरूप जीव का लक्षण ले। यदि कोई पूछे कि जीव का लक्षण क्या है ? तो उसका उत्तर है कि जीव का लक्षण उपयोग है "जीवो उवओग लक्खणो" यह शुद्ध लक्षण है, क्योकि इससे रहित कोई जीव नही होता तथा सभी जीवो मे उपयोग लक्षण है। इसके विपरीत जीव का लक्षण यह माना जाय कि पञ्चेन्द्रिय हो वह जीव है। तो यह सभी जीवो

मे नही जा सकता पञ्चेन्द्रिय से आप क्या समझते है ? पांच इन्द्रिया ये है– कान, आख, नाक, मुँह और शरीर। यदि हम कहे कि पाँच इन्द्रियो वाला ही जीव है तो जिसके चार इन्द्रिया है, तीन इन्द्रिया है क्या वह जीव नही हैं ? दो इन्द्रियां हैं तो क्या वह जीव नही ? एक इन्द्रिय है तो क्या वह जीव नही ? अत' जीव मात्र का पचेन्द्रीयत्व लक्षण बताना यह जिस प्रकार दोषपूर्ण है उसी प्रकार जीवन के विषय में एक विद्वान ने कहा है—**"दोष विवर्जितं यद् तद् जीवनम्"** दोष से रहित है वह जीवन है। यह भी दोषपूर्ण लक्षण है।

मैं यहाँ आपको बतला रहा हू कि जीवन का सही लक्षण क्या है। इस प्रश्न के उत्तर मे जब यह कहा जाय—**"दोष विवर्जितं यद् तज् जीवनम्"** इस पर यदि उपर्युक्त तरीके से विचार करें तो यह लक्षण कहा तक शुद्ध है ? इसकी परिभाषा के साथ आपको थोड़ा सा बारीकी से चिन्तन करा रहा हूं। यह लक्षण शुद्ध नही है। **'दोषविवर्जितं यत् तद् जीवनम्'**—दोष रहित जीवन यह लक्षण जा सकता है। पर साथ ही जीवन रहित तत्व मे भी यह चला जाता है। इस परिभाषा के अनुसार यदि दोप रहित परमाणु हो तो वह जीवन कहला सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से धर्मास्तिकाय दोष रहित है तो उसको भी जीवन कहना पडेगा पर धर्मास्तिकाय मे जीवन कहा ? तो यहा पर घोटाला हो जायेगा। इसलिये जीवन की उपरोक्त परिभाषा शुद्ध नही कही जा सकती। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय व आकाशास्तिकाय भी अपने आपमे दोप रहित है। जीवन की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार इन्हे भी जीवन समझ लिया जायगा—पर वे तो जड है। अत यह लक्षण अतिव्याप्ति दोपयुक्त वन जाता है। इसमे जीवन के पूरे लक्षण नही आ रहे हैं। जीवन के शुद्ध लक्षण को पहिचानने के लिये मैं आपके सामने वह चीज रख रहा हू—शुद्ध लक्षण को जानने के लिए आपको अपना जीवन सस्कारित करना है,

सस्कारित जीवन के साथ लक्षण को समझने का प्रयास करेंगे तो समझ मे आयेगा और बुद्धि का निखालिश रूप सामने आयेगा। इस बारीक बात को समझने का प्रयास कर रहे हैं। सस्कार किस रूप मे कर रहे हैं। आप कह दें—महाराज, आदिवासी की तरह हम थोडे ही है। हमारा जीवन तो सस्कृतिमय है। हमारे जीवन की गति तेज है। हम अपनी बुद्धि, से कहा से कहा पहुच गये हैं, कहा कहा पर दौड रहे है। कितनी पेनी बुद्धि, सूक्ष्म दृष्टि हमारे पास आ गई है—क्या यह हमारे जीवन का सस्कार नही है? क्या आप इसको सस्कार नही मानेंगे? यह आप तर्क दे सकते हैं। मैं इस तर्क के पीछे आपको चिन्तन देना चाहता हू। आप स्वय सोचिये। आज का इन्सान अपनी बुद्धि का परिमार्जन करके चल रहा है, यह अवश्य है कि आदि युग का जो मनुष्य था, उसकी जो प्रतिभा थी, उसका जो चिन्तन था, उसके रहन-सहन की जो पद्धति थी, जिस प्रकार से वह रहता था उसमे और आज मे रात दिन का अन्तर आ गया है। कहा आदि युग का मनुष्य और कहाँ आज का मनुष्य।

इसलिये आप गभीरता मे चिन्तन कीजिये। मैं सिर्फ आप लोगो को ही नही, बुद्धजीवी वर्ग को, विद्वान लोगो को सम्बोधन कर रहा हू कि वे अपने दिल-दिमाग से सोचे, चिन्तन करें कि आज का यह जीवन वस्तुत सस्कारित है। आप चिन्तन करेंगे तो अनुभव होगा कि वास्तव मे यह जीवन सस्कारित नही है विज्ञान मे भौतिक तत्वो की और बौद्धिक शक्ति की भी वृद्धि हुई है। मानव विद्युत गति मे दौड रहा है, परन्तु जीवन के इस प्रश्न को टूटने के लिये, इस प्रश्न को हल करने का क्या प्रयास किया जा रहा है? इस स्थिति के साथ मैं आज यह बता रहा हू कि आज जितनी विकास की स्थिति है उस पर आप सोचे कि क्या यह आपके जीवन का सस्कार है? क्या आपके जीवन के अन्दर उतनी शान्ति मिलती है। जितना बुद्धि का विकास हुआ है उसके साथ ही साथ आपके जीवन की गति

मिली है, शान्ति बढी है ? नही, अशान्ति बढी हैं। बुद्धिजीवी वर्ग का जिस तरह से विकास हुआ है उसमे आप बिलकुल सही तौर पर, अपने अन्तर पर हाथ रख कर पूछिये कि शान्ति मिली है कि अशाति ? अशान्ति। बडे से बडे जौहरी से पूछिये ? आपने जवाहरात के अन्दर तरक्की की है लेकिन क्या उससे जीवन के अन्दर शान्ति मिली है ? यदि उससे जीवन के अन्दर शान्ति का सस्कार नही है तो समझना चाहिये कि वह जीवन वस्तुत सस्कारित नही हो पाया है। आज जो सस्कार है वे कुछ और ही है। वास्तविक जीवन के सस्कार कुछ और ही है।

संस्कारों का चमत्कार

जिस जीवन मे छोटी चिनगारी-सा सस्कार आ जाता है वह जीवन कैसा चमत्कार दिखा सकता है, इसके लिये थोडा रूपक कल अधूरा छोड गया था। एक तरफ ८० वर्ष की बुढ़िया जिसने बाल बच्चो का पोषण किया, पोते पड़ पोते देखे और उनसे उसका सारा घर भर गया। कितना विकास कर लिया। क्या उसने जीवन का सस्कार किया है ? जीवन मे यह सब कुछ किया,घर को परिवार से कितना भरा पर उस बुढिया को शान्ति कितनी मिली ? एक तरफ एक तरुणी जो अभी नव विवाहिता है, विवाह करके ससुराल आई है। जब उसके सामने यह जटिल प्रश्न आया, उस प्रश्न को लेकर वह प्रथम आती है और देखती है सासुजी अशान्ति के झूले मे झूल रही है वे सोचती रही वह बुढिया उसके साथ अपशब्दो का प्रयोग करेगी, अमगलकारी शब्दो का प्रयोग करेगी आदि। तो वह नवविवाहिता कहती है कि सासुजी, आज आप यह क्या सोच रही है, कि क्या आपके परिवार के लिए अमगलकारी शब्दो का प्रयोग कर देने से वह परिवार उसमे परिणित हो जायेगा। यह सोचना आपका गलत है। यदि अमगल शब्दो से सीधा किसी के ऊपर आक्रमण होता हो तो अमगल

शब्द आज दुनिया के अन्दर गूँज रहे हैं, गाली गलौज देने वाले दुनियाँ मे कितने है और कितने गाली गलौज दे रहे है। आज विज्ञान ने शब्दो को दुनियाँ के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुचा दिया है और एक कमरे के अन्दर बैठकर दी जाने बाली गाली सारे वायुमण्डल मे फैल रही है वह किस मनुष्य से छिपती है। तो क्या हर मनुष्य ऐसे अमगलकारी शब्द से अमगल रूप बन जायगा। वह छोटी अवस्था वाली तरुणी सासूजी से कहती है, सासूजी आप इस विषय की चिन्ता मत करिये। ऐसे अमगलकारी शब्द मेरे जीवन को चिपकने वाले नही हैं। ये आपके जीवन और आपके परिवार के लिये अशुभ नही बन सकते। किन्तु यदि आप इनको पकडने की चेष्टा करेंगे, आप इनको अपने मन मे स्थान देंगे तो अमगलकारी कार्य हो सकते है। यदि इनको जीवन मे स्थान नही देंगे, जीवन के अन्दर इस पर पश्चाताप नही करेंगे तो कुछ विगडने वाला नही है। आप इसके लिये अनुमति दीजिये मैं स्वय आज उस मातेश्वरी के पास पहुँचती हू। इस तरह उसने अपनी भावना को व्यक्त किया। सासूजी उससे कहने लगी, बहू रानी अभी-अभी तुम इस घर मे प्रवेश कर आई हो तुम्हारा जीवन कोमल है, तुमने दुनिया की ऊँची-नीची स्थिति अभी नही देखी है, अभी यह जीवन की कोमल अवस्था है। मेरे सामने इस प्रकार के शब्द कहना सहज है क्योकि अपने पिता से तुमने यह सस्कार पाया है और उसी दृष्टि से तुम यह यह बोल रही हो, परन्तु जिस वक्त उस बुढिया के सामने जाओगी जो एक विकराल रूप लेकर प्रस्तुत होती हैं तो तुम घवरा जाओगी और तुम कही घवरा कर दूसरी स्थिति पैदा न कर दो।

सासुजी के इन शब्दो को सुनकर पुत्र वधू मुस्कराई। कहने लगी, सासूजी, परीक्षण के तौर पर मुझे भेज दीजिये। मैं यह चाहती हू कि अति स्नेह के साथ मुझे आशीष दें। सासुजी ने आज्ञा दी, और वह घर से बुढिया के पास जाने लगी। उसने सोचा, मैं जाकर

मिली है, शान्ति बढी है ? नही, अशान्ति बढी है। बुद्धिजीवी वर्ग का जिस तरह से विकास हुआ है उसमे आप बिलकुल सही तौर पर, अपने अन्तर पर हाथ रख कर पूछिये कि शान्ति मिली है कि अशाति ? अशान्ति। बडे से बडे जौहरी से पूछिये ? आपने जवाहरात के अन्दर तरक्की की है लेकिन क्या उससे जीवन के अन्दर शान्ति मिली है ? यदि उससे जीवन के अन्दर शान्ति का सस्कार नही है तो समझना चाहिये कि वह जीवन वस्तुत सस्कारित नही हो पाया है। आज जो सस्कार है वे कुछ और ही है। वास्तविक जीवन के सस्कार कुछ और ही है।

संस्कारों का चमत्कार

जिस जीवन मे छोटी चिनगारी-सा सस्कार आ जाता है वह जीवन कैसा चमत्कार दिखा सकता है, इसके लिये थोडा रूपक कल अधूरा छोड गया था। एक तरफ ८० वर्ष की बुढ़िया जिसने बाल बच्चो का पोषण किया, पोते पड पोते देखे और उनसे उसका सारा घर भर गया। कितना विकास कर लिया। क्या उसने जीवन का सस्कार किया है ? जीवन मे यह सब कुछ किया,घर को परिवार से कितना भरा पर उस बुढिया को शान्ति कितनी मिली ? एक तरफ एक तरुणी जो अभी नव विवाहिता है, विवाह करके ससुराल आई है। जब उसके सामने यह जटिल प्रश्न आया, उस प्रश्न को लेकर वह प्रथम आती है और देखती है सासुजी अशान्ति के झूले मे झूल रही है वे सोचती रही वह बुढिया उसके साथ अपशब्दो का प्रयोग करेगी, अमगलकारी शब्दो का प्रयोग करेगी आदि। तो वह नवविवाहिता कहती है कि सासुजी, आज आप यह क्या सोच रही है, कि क्या आपके परिवार के लिए अमगलकारी शब्दो का प्रयोग कर देने से वह परिवार उसमे परिणित हो जायेगा। यह सोचना आपका गलत है। यदि अमगल शब्दो से सीधा किसी के ऊपर आक्रमण होता हो तो अमगल

शब्द आज दुनिया के अन्दर गूंज रहे हैं, गाली गलौज देने वाले दुनियाँ मे कितने हैं और कितने गाली गलौज दे रहे है। आज विज्ञान ने शब्दो को दुनियाँ के एक कोने मे दूसरे कोने पर पहुचा दिया है और एक कमरे के अन्दर बैठकर दी जाने वाली गाली सारे वायुमण्डल मे फैल रही है वह किस मनुष्य से छिपती है। तो क्या हर मनुष्य ऐसे अमगलकारी शब्द से अमगल रूप बन जायगा। वह छोटी अवस्था वाली तरुणी सासूजी से कहती है, सासूजी आप इस विषय की चिन्ता मत करिये। ऐसे अमगलकारी शब्द मेरे जीवन को चिपकने वाले नही है। ये आपके जीवन और आपके परिवार के लिये अशुभ नही बन सकते। किन्तु यदि आप इनको पकडने की चेष्टा करेगे, आप इनको अपने मन मे स्थान देगे तो अमगलकारी कार्य हो सकते है। यदि इनको जीवन मे स्थान नही देंगे, जीवन के अन्दर इस पर पश्चाताप नही करेंगे तो कुछ विगडने वाला नही है। आप इसके लिये अनुमति दीजिये मैं स्वय आज उस मातेश्वरी के पास पहुँचती हू। इस तरह उसने अपनी भावना को व्यक्त किया। सासूजी उससे कहने लगी, बहू रानी अभी-अभी तुम इस घर मे प्रवेश कर आई हो तुम्हारा जीवन कोमल है, तुमने दुनिया की ऊँची-नीची स्थिति अभी नही देखी है अभी यह जीवन की कोमल अवस्था है। मेरे सामने इस प्रकार के शब्द कहना सहज है क्योकि अपने पिता से तुमने यह सस्कार पाया है और उसी दृष्टि से तुम यह यह बोल रही हो, परन्तु जिस वक्त उस बुढिया के सामने जाओगी जो एक विकराल रूप लेकर प्रस्तुत होती तो तुम घबरा जाओगी और तुम कही घबरा कर दूसरी स्थिति पैदा न कर दो।

सासुजी के इन शब्दो को सुनकर पुत्र वधू मुस्कराई। कहने लगी, सासूजी, परीक्षण के तौर पर मुझे भेज दीजिये। मैं यह चाहती हू कि अति स्नेह के साथ मुझे आशीष दें। सासुजी ने आज्ञा दी, और घर पर से बुढिया के पास जाने लगी। उसने सोचा, मैं जाकर

निष्क्रय बैठ जाऊँगी तो मेरे मन मे व्यर्थ का पाप का कचरा इकट्ठा होगा इसलिये कुछ न कुछ कार्य हाथ मे लेकर जाना चाहिये। इस दृष्टि से हाथ का चर्खा, कातने की पूनी, सब साधन लेकर पहुची। जब बुढिया के द्वार पर जाकर यह कन्या खडी हुई, तो कुछ बिलम्व हो गया था। इस बिलम्ब की स्थिति से बुढिया तमतमा उठी और बच्ची को देखकर पहले ही स्वर मे उस बुढिया ने कहा, अरी राड इतनी देर से आयी। आप सोचिये नवीन पुत्र बधू को कोई राड शब्द से पुकार ले। मैं समझता हूँ कि बन्दूक की गोली का असर जितना नही होता है उतना उसका असर होता है। परन्तु जिसके मन मे सुसस्कार है उसके मन को इस प्रकार के शब्द भेदते नही है किन्तु सुसस्कार उसके सुरक्षक बन जाते है। एक भोडल पत्थर होता है जिसके पट के पट उतरते चले जाते है। उस पर बन्दूक की गोली का असर नही होता है। क्योकि वह स्वच्छ भी होता है और उसके पट भी कुछ कठोर होते हे। जिस जीवन मे सस्कारो के पट भोडल के समान हो गये है उसके सामने 'राड' जैसे शब्द भी आ जाय जो बन्दूक की गोली के तुल्य है तो भी उसके जीवन पर उनका कोई असर नही होता है। बुढिया को वह नव युवती मुस्करा कर उत्तर देती है, सासु जी राज! आपका परिचय प्राप्त करने मे थोडा बिलम्व हो गया। मुझे क्षमा करिये, अव मैं आपके सामने उपस्थित हो गयी हूँ।" ऐसे कोमल शब्दो से उसने उसको सम्बोधन किया और चर्खा लेकर बैठ गयी। उधर उस बुढिया के मुख से गालियो की वर्षा होने लग गयी। लेकिन वह बहन मस्ती से अपना कार्य कर रही है, और अपने मन मे एक भी शब्द को स्थान नही दे रही है। सोच रही है कि किसी की ऐसी आदत होगी। वह अपना कार्य करती रही। बुढिया बहुत देर तक बोलती रही। बीच मे बोलने वाला मिल जाता है तो उसको अधिक समय

तक बोलने की और लडने की ताकत मिल जाती है। जैसे कहा है

देते गाली एक हैं, पलटे गाल अनेक,
जो गाली पलटे नहीं तो रहे एक की एक ॥

कोई गाली गलोज दे रहे है तो देने दीजिये उसका उत्तर मत दीजिये वह गाली एक की एक रह जावेगी किन्तु यदि उत्तर मे पुन: गाली दी गई तो अनेक हो जावेंगी। उस बहिन ने बुढिया की गालियो का कोई उत्तर नही दिया। बुढिया बोल-बोल कर थक गयी। उस नवीन पुत्र वधू ने सोचा कि आज का कार्यक्रम पूरा हो गया। उसने सरलता के साथ प्रश्न किया— सासुजी! आपका कार्य पूरा हो गया? इतना कहते ही तो बुढ़िया फिर बकने लगी और लडती रही। दो तीन तरह के प्रसग आये आज वह बुढ़िया न पानी पी सकी और न शान्ति से अन्न ग्रहण कर सकी। वह बोलती रही। उसके मस्तिष्क मे गर्मी चढ गयी। मस्तिक की कोशिकाओ पर बड़ा बुरा असर पडा। खून की नाडियो पर विपरीत असर पडा। और वह बेहोश होकर गिर पडी। लेकिन सस्कारित जीवन वाली उस तरुणी पर कोई असर नही हुआ। वह सोचती है, 'यदि मैं इन शब्दो को ग्रहण करूंगी तो मेरे पर इनका असर होगा। अन्यथा नही। उसका सोचना भी तथ्य युक्त है बडे बडे बाजारो मे दुकानें लगती हैं, हाट लगती है। यहां शायद जयपुर मे तो न लगती हो? गांवो मे तो लगती है। मैंने सुना है यहा भी लगती है। तरह तरह के व्योपारी माल असबाब लेकर जाते हैं। उनमे जूते के व्यापारी भी आते हैं और जोडे के जोडे उठा कर जाने वालो को बताते हैं 'एक दूं या दो दूं।' कदाचित आप भी उस बाजार मे निकल जाओ तो आपको भी बता देगा। क्या आप उस समय उससे लडोगे? क्या सोचेंगे? आप यह सोचोगे कि यह इसका व्यापार है। क्या करे बेचारा जो चीज है वह बता रहा है। मुझे वह चीज नही चाहिये।

इन्कार करोगे कि भाई मुझे नही चाहिये। जैसे उस व्यापारी का पैसा व्यापार समझ कर आगे वढ जाते है उसी तरह मानव समाज का हाट लगा हुआ है और प्रत्येक आदमी कई चोजे लेकर बैठा है। असस्कारित जीवन है तो उसके पास उस तरह की चीजे है वह उनको लेकर बैठा है। कोई आदमी उधर से गुजरता है तो वह उनको वही देता है जो उसके पास है किन्तु जो सस्कारित है वह अपने मस्तिष्क को नियत्रित रखता है और यह सोच लेता है कि इस भाई के पास इन्ही चीजो का व्यापार है अत यही वस्तु देगा। मुझे इनकी आवश्यकता नही है। मैं न लूँ वह असस्कृत व्यक्ति हजार गालियाँ दे तो क्या हजार अपमान सूचक शब्द बोलता है तो क्या। वह व्यक्ति अपने मस्ति'क को नियन्त्रण मे रखता है और किसी प्रकार की विकृति, अपने मस्तिष्क मे प्रवेश नही करने देता है। मैं समझता हूँ कि आपके मस्तिष्क मे उसी प्रकार भी विकृति प्रवेश नही करेगी। लेकिन ये तत्त्व अपनाने से आ सकते है। विना अपनाये नही आ सकते।

हा तो, वह कन्या यह सोचे कि मरे तो मरने दो, अच्छा हुआ। उठाओ मत सहज ही मर रही है, मुझे ऐसी गालिया दी। किन्तु यह असस्कृत मन को बात है। जो भाई सुसस्कारित जीवन वाला है वह यह सोचेगा कि यह भाई मूर्छा मे पड़ा है और मै सचेष्ट हू। यदि आप जीवन को समझना चाहते है तो सबसे पहले आपका कर्त्तव्य है कि दुश्मन के प्रति भी शान्ति की कामना करे और उसको उठावे।

बुढिया गाली बकती-बकती मूर्छा खाकर गिर पडी। यह देख कर वह तरुणी उठी। उसके मन मे तो अपार करुणा भरी थी उसने चर्खे को एक तरफ रखा और बूढी माजी को गोदी मे उठाया, अपने घुटने पर उसके मस्तिष्क को रखा, पानी का छीटा दिया और पवन करके उसको सचेष्ट की। दिन भर की थकी हुई

बुढ़िया ने जैसे ही नेत्र खोले। उसकी दृष्टि उस बालिका की ओर गिरी जिसके नेत्रों से अमृत का झरना बह रहा था, जिसके नेत्रों से आन्तरिक सदभावना और सद्गुणों की अमृत वर्षा हो रही थी, उस प्रेम मयी वृत्ति को देखकर बुढ़िया चकित हो गयी। सोचने लगी, कहां मेरी ८० वर्ष की जिन्दगी और कहां १६ वर्ष की तरुणी का जीवन। कहां उसका जीवन और कहां मेरा जीवन? किस प्रकार मैंने अपना जीवन खत्म कर दिया। आज मैं किस प्रकार इसके साथ पेश आयी किस प्रकार मैंने इसको गालियां दी और किस प्रकार मैंने इसको अपमानित किया लेकिन इसने अपने मन पर उसका कोई असर नहीं होने दिया। यह देवी है, यह भगवती है। इसको किस प्रकार सम्बोधित करूँ। उस बुढ़िया के मन में परिवर्तन आता है। बड़े बड़े लोगों के प्रयासों से भी परिवर्तन नहीं आया किन्तु इस बहिन के मूक भावों से आज इसमें परिवर्तन आ गया। अन्दर के पजुषित भावों को सद्वृत्ति के द्वारा बाहर फेंकने लगी और अपनी वृत्तियों को प्रकट करने लगी।

यह वहू हमारे गाव मे एक देवी के रूप मे आई है। यही स्वर चारो ओर से आने लगा देखिये उस कन्या ने अपने जीवन को पूरी तरह से नही थोडा सा ही सस्कारित किया फिर भी दुनिया वालो ने उसको अपना पूज्य मान लिया।

मानव यदि अपने जीवन मे थोडा भी सस्कार को अपना ले और तदनुरूप प्रवृत्ति करता हुआ पदम प्रभु की प्रार्थना मे लीन हो जाए तो जीवन की वास्तविक शान्ति उससे दूर नही रहेगी आवश्यकता है जीवन के सस्कारित स्वरूप को समझकर चलने की।

लाल भवन,
२२-७-७२

●●

जैसे सस्कार किया हुआ अन्न मधुर व सुपाच्य होता है, वैसे ही सस्कार सपन्न जीवन जगत मे सबके लिए स्पृहणीय होता है।

●

प्रमाद और कषाय का त्याग कर अन्त.करण को ऐसा सुसस्कारी वनाओ, कि उसमे प्रभु की शिक्षा रूप सिहनी का दूध ठहर सके।

—आचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

●●

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी महाराज

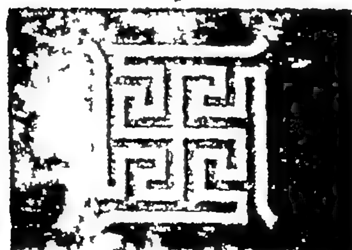
के

जयपुर चातुर्मास में प्रदत्त प्रवचन

हम सबको प्रेरणा प्रदान करते रहें।



H. B.	एच. बी.
BIJAIRAJ MOOTHA	विजयराज मूथा
& SONS	एण्ड सन्स
555 Bengali Bazar Road	५५५, बेंगाली बाजार रोड
ALAUDUR	अलन्दूर
MADRAS 16	मद्रास १६



पलियंत मणुआणजीवियं । —सूत्रकृतांग

मनुष्य का जीवन बहुत ही अल्प एवं अन्त वाला जीवन है ।

तयसं व जहाइ से रयं । —सूत्रकृतांग

जैसे नाग केंचुली को छोड़ देता है वैसे ही दोषों को छोड़ देना चाहिए ।

---

४ | जीवन का आदर्श

श्री जिन राज सुपार्श्व
पूरो आश हमारी,
प्रतिष्ठसेन नरेश्वर को सुत
पृथ्वी तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब सांचो
सेवक ने सुखकारी ॥ श्री जिन राज० ॥
धन धाम पर मोह इत्यादिक
स्वर्गादिक सुख पूरो
बार बार तुम कहों कितो

वीतराग देव के चरणो मे कुछ न कुछ निवेदन कर ही दिया करता हू फिर चाहे वह विनयचन्दजी की चौबीसी मे से हो, आनन्दघन जी की चौबीसी मे से हो या देवीचन्दजी अथवा अन्य किसी भी आचार्य एव सत की चौबीसी मे से हो। सन्त कवियो ने प्रभु के प्रति अपनी प्रगाढ भक्ति भावना को नाना रूपो मे नाना प्रकार से व्यक्त किया है।

आज की प्रार्थना के अन्त मे भगवान् सुपार्श्वनाथ के चरणो मे सन्त कवि ने कुछ निवेदन किया है। क्या निवेदन किया है ? निवेदन किया है कि भगवन् ! आप मेरी आशाओ को पूर्ति करे। आशा ? प्राणी मात्र के लिये आशा एक सम्बल है जिसके सहारे वे अपने अनेकानेक जीवन गुजार देते है। पर सामान्य प्राणी की आशा मे और सन्त कवियो की आशा मे अन्तर है। उसी अन्तर को समझना है।

जीवन में आशा का स्थान

कभी कभी कुछ तत्वज्ञ बोल उठते है कि आशा का तो परित्याग करना चाहिये। आशाओ का त्याग किये बिना तो हम भगवान को प्राप्त नही कर सकते, मोक्ष सुख प्राप्त नही कर सकते, यहा तक कि आशा का त्याग किये वगैर हम मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर ही अग्रसर नही हो सकते। मैं निवेदन कर दू कि यह सही है कि आशाओ को अन्त मे छोडना ही होगा, पर अगर तत्वज्ञो का यह कथन सर्वथा एकागी रूप मे हो तो सही नही है। अगर इस कथन को अपेक्षादृष्टि से लिया जाय तो यह कथन सही कहा जा सकता है।

प्रभु प्राप्ति के लिये आशा का त्याग करना अनिवार्य है, आवश्यक है। पर साथ ही अपेक्षा दृष्टि से आशा का रहना भी आवश्यक है, अनिवार्य है। आप कहेगे यह कैसे ? आप भ्रम मे पड़ सकते है। पर ऐसा कुछ नही है। मैं इसे थोड़ा स्पष्ट कर देता हू।

आप कुछ चिन्तन, मनन करेंगे तो यह बात आपको भी स्पष्ट हो जावेगी। आपका मस्तिष्क जो कुछ इधर-उधर के पुस्तकीय ज्ञान से सना हुआ है और जो कुछ तज्जन्य संस्कार आपके मस्तिष्क में जमे हुए हैं, वे संस्कार एक दृष्टि से काल्पनिक हैं, स्व-अनुभूति के नहीं हैं। अनुभूति के संस्कार जो कि प्रत्यक्ष-बिना पौद्गलिक इन्द्रियों के सहारे स्वानुभव के आधार पर होते हैं वे ही यथार्थ अनुभूति के संस्कार कहलाते हैं। जो सुनने से, स्मृति से, या कल्पना से वस्तु का अनुभव किया जाता है वह भी सामान्य तौर पर अनुभूति तो कहलाती है, लेकिन वस्तुतः वह साक्षात् अनुभूति नहीं कही जा सकती। मैं उदाहरण देकर इसे थोड़ा स्पष्ट कर दूं। एक व्यक्ति के पैर में कांटा लगा। दूसरा व्यक्ति उसके कांटा लगने का अनुभव करता है, और कल्पना करता है, कि इस कांटा लगने से उस व्यक्ति को कितनी वेदना हो रही होगी और इसके लिये वह अपने पैर में पूर्वकाल में कभी कांटा लगने की वेदना से तुलना करता है, तो एक सीमा तक वह दूसरे पुरुष के लगे कांटे से उत्पन्न वेदना का अनुभव कर लेगा, पर स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव में और उस दूसरे स्मृति या कल्पना से ज्ञात अनुभव में काफी अन्तर रहेगा।

की आशाएँ जड़ मूल से नष्ट हो गई तो उस मनुष्य का जीवन तो समाप्त प्रायः है। कवियो ने कहा है **आशा सर्वोत्तमा ज्योति.** आशा सर्वोत्तम प्रकाश है। हिन्दी में भी कहावत है—

जब तक श्वासा तब तक आशा—इस कथन को भी आप अपेक्षा दृष्टि से हल करिये। चिन्तको के बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए इस प्रश्न का हल खोजिये।

आशा के सहारे बच्चे बडे होते हैं, आशा ही के सहारे तरुण अपनी तरुणाई मे जो कुछ सोचता है वह कर गुजरता है। आशा के सहारे वृद्ध अपने जीवन के शेष काल का स्वप्न देखता है।

यह तो स्पष्ट है कि आशा आशा मे अन्तर है। एक आशा को हम आध्यत्मिक प्रगति का सूचक कह सकते है तो दूसरी आशा को सासारिक, पौद्‌गलिक जीवन की लम्बी परम्परा का कारण कह सकते है। तो कवि की आशा क्या है ? वह पुकार उठता है :—

श्री जिनराज सुपास पूरो आस हमारी।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक मन वाछित सुख पूरो।

वन्धुओ, मानव चाहे मु ह से भले ही कह दे कि आशा का सर्वथा त्याग करना है। लेकिन अनुभूति के साथ और प्रत्यक्ष आन्तरिक शक्ति के साथ वह नही कह सकता। मस्तिष्क के संस्कारो से यदि उसका जीवन सस्कारित है तो उन सस्कारो के सहारे तो वह कह सकता है, लेकिन जीवन के सस्कारो से सस्कारित होकर और "किं जीवन" इस प्रश्न का समाधान जिसने पा लिया है वह मानव वस्तु स्थिति को ओझल नही करेगा। वह सिर्फ हवाई महल नही वनायेगा, वह काल्पनिक आकाश मे उड़ान नही करेगा वरन् सस्कारित जीवन के साथ जमीन पर भी चलना चाहेगा।

जीवन के वर्तमान का जो शाश्वत प्रश्न है, जीवन की वर्तमान स्थिति की जो ज्वलन्त समस्याए है, उन सवको यथार्थवाद के

धरातल पर उतरकर, मानव को उनका सही समाधान जब तक नहीं मिलेगा, तब तक मानव अपने जीवन की सही परिभाषा नहीं समझ पायेगा और न वह अपने वर्तमान जीवन में उस पर आचरण ही कर पायेगा। इस विषय में गहराई से चिन्तन करना होगा। इस दृष्टि से व्यक्ति के हृदय गत भावों को यदि आप आंकना चाहेंगे तो वह अपने दिल को खोल कर अपनी आन्तरिक अभिलाषा को व्यक्त कर देगा और व्यक्त करते हुए कहेगा कि अमुक-अमुक आशाएँ मुझे लगी हुई हैं। कोई कहेगा कि मुझे धन चाहिए, कोई वैभव की इच्छा प्रकट करेगा और कोई नाना प्रकार के सांसारिक पौद्गलिक सुखों की अपनी चाह, प्रकट करेगा। इस प्रकार संसार में आशाएँ इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं—इच्छा बहुविहा लोए इन्द्रिय पोषण की कामनाएँ और इच्छाएँ ही अधिकतर वह प्रकट करेगा। ऐसी तो कोई विरल ही आत्मा होगी जो इन भौतिक पौद्गलिक इन्द्रिय जन्य पदार्थों के प्रति अपनी निराशा अनिच्छा प्रकट करेगी, इनके प्रति उदासीन और अनासक्त होगी और वस्तुतः आन्तरिक जीवन के सत्य प्राप्ति की अभिलाषा से ओतप्रोत होगी।

तो इस तरह से यह स्पष्ट है कि अधिकतर मानवों को सुन्दर शरीर धन धान्य और सम्मान की आशा लगी रहती है। इसके बिना मानव अपने मन, अपने वर्तमान जीवन को दयनीय और असहाय भावना से अनुभव करता है।

को समझना आवश्यक है। अर्थ और काम का पिण्ड जीवन नही है। फिर इससे ऊपर के दूसरे शब्दो में कहू तो जीवन का अर्थ प्राण है लेकिन उस प्राण को हम कब समझ पायेगे ? तब, जबकि हम वस्तु स्थिति का ज्ञान करेंगे, उसका चिन्तन करेंगे-न आकाश मे उड़ेंगे, न आदर्शवाद की कोरी बाते करेगे। हम आध्यात्मिक जीवन की पृष्ठभूमि मे चिन्तन करेगे तब जाकर हमारे जीवन की वह सस्कारित अवस्था आयेगी तो आप आशाओ की स्थिति के साथ चिन्तन कर रहे है। आज काम और अर्थ की आशाये लगी हुई है और इसके एकान्तिक स्वरूप में मानव बह रहा है। वास्तविक सस्कारित कहलाने वाला प्राणी भी इस अर्थ और काम को सर्वथा तिरष्कृत नही कर सकता। यथास्थान किसी न किसी रूप मे उसकी यथार्थता भी समझता है। वह चाहे हेय हो, ज्ञेय हो, अथवा उपादेय हो उसे ठीक रूप मे समझता है।

आज का विचारशील मानस कुछ ऐसा बन चुका है कि कोई कोई तो अर्थ और काम को सर्वथा तिरस्कृत करता है और उस आध्यात्मिक दृष्टि से चरम छोर को ही वर्तमान मे प्राण की सज्ञा देता है, लेकिन वर्तमान जीवन किस धरातल पर है। इसे वह भूल जाते है। यदि उसकी दृष्टि एकान्तिक बन जाती है तो वह भी दूसरे शब्दो मे असस्कारित जीवन कहा जा सकता है। वह वीतराग दृष्टि से सस्कारित जीवन नही है। सस्कारित जीवन का मापदण्ड देखे तो वस्तु 'स्थिति का यथार्थ रूप आ सकता है, और वही जीवन की वास्तविक आशाओ की ओर उन्मुख होगा। इस बात का सकेत प्रार्थना की कड़ियो के अन्दर थोड़ा दिया गया है। उसमे अर्थ और काम को भी लिया है लेकिन स्वतन्त्र और स्वच्छन्दता के रूप मे नही। उसको नियन्त्रित अवस्था मे लिया है इसलिए कविता मे सकेत है, भगवान् आप मेरी आशा की पूर्ति करो, लेकिन मेरी आशा क्या है ? जो दुनियाँ की काम और अर्थ

कवि की बनाई हुई है और कवि ने सासारिक मनुष्यो की भावनाओ को ध्यान मे रखकर धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ को भी जोड दिया। वीतराग देव ने कहा है—

तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा अन्तिए एगमवि
आयरिए धम्मियं सुवयण सोच्चा णिसम्म तओ
जायसवेगे जायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते से ण
जीवे धम्मकामए पुण्ण कामए सग्ग कामए मोक्ख कामए'

—भगवती सूत्र

—तथारूप श्रमण अर्थात् निर्ग्रन्थ और महान-अर्थात् वीतराग वाणी का अनुसरण करने वाला श्रावक उसके पास से वीतराग देव का धर्म युक्त एक भी सुवचन सुनकर वह सवेग युक्त होता है, श्रद्धा सम्पन्न होता है तो वीतराग देव के कहे हुए धर्म के प्रति तीव्र धर्मानुराग उत्पन्न होता है। और जब तीव्र अनुराग पैदा हुआ तो सम्यग् दृष्टि-हेय,ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया, उसने आत्मा परमात्मा का रहस्य समझ लिया, यह भी समझ लिया कि पुण्य जानने योग्य है? ग्रहण करने योग्य है? अथवा छोड़ने योग्य है? और उसके साथ ही काम क्या है, अर्थ क्या है? मोक्ष क्या है?

बन्धुओ, अव जरा इन वाक्यो के अर्थ की तरफ ध्यान दीजिए और उस दृष्टि से चिन्तन करिए। जिसमे धर्म के प्रति प्रगाढ श्रद्धा होगी, वही धर्म की कामना करता है। कामना अर्थात् एक दृष्टि से धर्म की आशा आकाक्षा करना, आशा करना, अभिलाषा करना यह सव अर्थ इसमे समाहित है। यह मेरा कथन नही है। कवि का भी वचन नही है स्वय भगवान श्री वीतराग देव की स्पष्ट वाणी है। तव यह कैसे कहा जा सकता है कि सर्वथा सभी कामनाओ से मुक्त रहना चाहिए। मुक्त भी होते है, पर व्यवहार मे, वह कौन-सी कामना से मुक्त होने की वात है? यह समझने की आवश्यकता है। उस कामना से हमे मुक्त रहना चाहिए जो मोहजनित हो, जिसमे

कवि की बनाई हुई है और कवि ने सासारिक मनुष्यो की भावनाओ को ध्यान मे रखकर धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ को भी जोड दिया। वीतराग देव ने कहा है—

तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा अन्तिए एगमवि
आयरिए धम्मिय सुवयण सोच्चा णिसम्म तओ
जायसवेगे जायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते से ण
जीवे धम्मकामए पुण्ण कामए सग्ग कामए मोक्ख कामए •

—भगवती सूत्र

—तथारूप श्रमण अर्थात् निर्ग्रन्थ और महान-अर्थात् वीतराग वाणी का अनुसरण करने वाला श्रावक उसके पास से वीतराग देव का धर्म युक्त एक भी सुवचन सुनकर वह सवेग युक्त होता है, श्रद्धा सम्पन्न होता है तो वीतराग देव के कहे हुए धर्म के प्रति तीव्र धर्मानुराग उत्पन्न होता है। और जब तीव्र अनुराग पैदा हुआ तो सम्यग् दृष्टि-हेय,ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया, उसने आत्मा परमात्मा का रहस्य समझ लिया, यह भी समझ लिया कि पुण्य जानने योग्य है ? ग्रहण करने योग्य है ? अथवा छोड़ने योग्य है ? और उसके साथ ही काम क्या है, अर्थ क्या है ? मोक्ष क्या है ?

बन्धुओ, अब जरा इन वाक्यो के अर्थ की तरफ ध्यान दीजिए और उस दृष्टि से चिन्तन करिए। जिसमें धर्म के प्रति प्रगाढ श्रद्धा होगी, वही धर्म की कामना करता है। कामना अर्थात् एक दृष्टि से धर्म की आशा आकाक्षा करना, आशा करना, अभिलाषा करना यह सब अर्थ इसमे समाहित है। यह मेरा कथन नही है। कवि का भी वचन नही है स्वय भगवान श्री वीतराग देव की स्पष्ट वाणी है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सर्वथा सभी कामनाओ से मुक्त रहना चाहिए। मुक्त भी होते है, पर व्यवहार मे, वह कौन-सी कामना से मुक्त होने की बात है ? यह समझने की आवश्यकता है। उस कामना से हमे मुक्त रहना चाहिए जो मोहजनित हो, जिसमे

एकान्त, रूप से केवल अर्थ और काम की प्राप्ति ही ध्येय रूप मे हो। केवल अर्थ और काम को चरम लक्ष्य मानकर जो चलना चाहे तो वह इस तरह की कामना त्याज्य है। पर जो जीवन के ध्येय रूप मे परमात्म स्वरूप की प्राप्ति को मानकर चलता है, वास्तविक सस्कारित जीवन को प्राप्त करना चाहते हैं वे इसकी कामना को इसकी आशा को या आकाक्षा को त्याग कर नही चल सकते।

जीवन क्या है? इस प्रश्न को हल करने के लिये वह **धम्मकामये** धर्म की कामना करके चलता है। **धम्मकामये** शब्द के साथ-साथ आगे जो शास्त्र पाठ आया है **पुण्णकामये**। वह पुण्य की भी कामना करता है।

कुछ तत्वज्ञ यह भी कहते है कि पुण्य की कामना क्यो करता है? तो वीतराग वाणी के उद्घोषक स्पष्ट कहते है कि चू कि मानव आज निखालिस आत्म स्वरूप मे नही है, इसलिए शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त करने के लिए सहायक रूप मे पुण्य की भी कामना करनी होगी। आत्मा आज के मानव के रूप में शुद्ध बुद्ध और मुक्त नही है। शरीर का और कर्मो का पिण्ड आज उसके साथ लगा हुआ है। उस शरीर पिण्ड से या कर्मपिण्ड से आधारित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रकट करना है तो आपको पुण्य की आशा करनी होगी। अगर आप और चिन्तन करेंगे तो ज्ञात होगा कि जिस अपने शरीर पिण्ड के साथ आत्मा है यह शरीर पिण्ड क्या है? पुण्य का फल ही तो है। तीर्थकर नाम कर्म की प्रकृति भी पुण्य का उत्कृष्ट फल है। इस प्रकार पुण्य के फल को देखे तो मनुष्य का जन्म मिलना, आर्य क्षेत्र का मिलना, पाच इद्रियो की निरोगता प्राप्त होना, और वीतराग देव के धर्म को श्रवण करने का अवसर मिलना आदि सब पुण्य प्रकृति रूप कर्म का फल कह सकते है। कामना रहित हो सकते है, पर क्य

आप बिना शरीर के द्वारा उद्यम किए, कामना रहित हो सकते है ? नही। बिना शरीर के किसी सासारिक प्राणी ने अपना पूर्ण विकास प्राप्त नही किया। चाहे वे तीर्थंकर ही क्यो न रहे हो। वज्रऋषभनाराच सहनन और समचतुरस्रसस्थान तीर्थंकरो के और अन्य पुण्यशाली जीवो के होते है और ये सभी पुण्य के फल कहे गये है। उस पुण्य प्राप्ति की स्थिति को तीर्थंकर जैसे प्रवल महापुरुष भी साधक अवस्था मे नही छोड सके है। शास्त्रकारो ने इस पुण्य के लिए कहा है कि यह जानने योग्य तो है ही, पर साथ ही ग्रहण करने योग्य भी है और त्यागने योग्य भी है।

आप प्रश्न करेगे कि जब पुण्य ग्रहण करने योग्य है तो मोक्ष क्या है ? क्योकि पुण्य की जब तक कामना होगी परिपूर्ण मोक्ष नही हो सकता है ?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्रकार अपेक्षा दृष्टि से देते है जीवन की तीन अवस्थाएँ मानी गई है। प्रारम्भिक, मध्यम और अन्तिम। वस तीन अवस्थाओ मे से गुजरते हुए प्राणी कव पुण्य को तथा सभी तरह की आक्षाको को, आशाओ को छोडे इसका स्पष्ट उल्लेख वीतराग वाणी मे है। वीतराग वाणी यथार्थ के धरातल पर चलती है, वह हवाई महल नही है।

प्राणी वर्तमान मे साधना के धरातल पर चल रहा है। उसे अपने जीवन का निर्वाह भी करना है, अपने परिवार, समाज और देश के प्रति भी उसके कुछ कर्त्तव्य है उनका निर्वहन भी करना है। आज की परिस्थितियो से भी प्राणी को निपटना है। राष्ट्र मे एक पवित्र वातावरण के निर्माण मे भी उसे अपना योगदान देना है। अपने परिवार और समाज के प्रति भी उसके जो कर्तव्य है उनको पूरा करते रहना है और यह सव करते हुए अपने जीवन को भी जीना है। किन्तु यह सव कैसे ? वही प्रश्न हमारे सामने वार-वार आता है "कि जीवन" जीवन क्या है, इसे कैसे जीया जाय ? कैसे इसे

समता के धरातल पर लाया जाय। समता की पराकाष्ठा तक इसे कैसे पहुचाया जाय ?

यदि इन प्रश्नो को हल करने के लिए अपने सभी प्रकार के कर्त्तव्यो का पालन करने के लिए और जीवन की चरम परिणति, चरम ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना है तो उसके लिए भी वर्तमान जीवन आवश्यक है। वर्तमान जीवन से वढते हुए चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पुण्य उपार्जन करना आवश्यक है, उसका एकान्त त्याग करने की वात करना युक्ति सगत नही है। वह वीतराग देव के रूप मे पहुचने के लिए सस्कारित भूमिका नही है। हा, साधना के चरमविन्दु पर जव प्राणी पहुच जावे तव यह पुण्य भी त्यागने योग्य हो जावेगा। इससे पहले पुण्य छोड़ने योग्य नही है,पुण्य सर्वथा ज्ञेय रूप मे नही समझा जावे, पर त्यागने योग्य भी समझा जावे। यह हमारा सूत्र है। साधना की पराकाष्ठा पर, चरम परिणति पर जव प्राणी पहुँच जावे तव सभी प्रकार के पुण्य भी त्यागने योग्य हैं। इसका ध्यान रखिए। इसको एक दृष्टान्त देकर मैं स्पष्ट कर दूँ ताकि आपकी समझ मे ठीक तरह से यह तत्व आ जाय।

नाव भी आखिर छोड़नी है

की है और कौन-सी लकडी की। यह जानकारी करने के वाद पत्थर की नाव को तो आप छोड देना, और लकडी की नाव ले लेना उसमे बैठकर समुद्र के परले किनारे पहुँच जाना वहा जाकर इस लकड़ी की नाव को भी छोड देना है, और किनारे पर उतर कर अपने गन्तव्यस्थल पर पहुँच जाना है। लेकिन एक वात है, वीच समुद्र मे तरग नही लाना है और कही उस तरग मे आप यह मत सोच बैठना कि इस लकडी की नाव को जब छोडना ही है तो अभी क्यो न छोड दिया जाए। किनारे तक पहुंचने तक इस नाव के बोझे को क्यो ढोया जाय। ऐसा मत करना। केवल किनारे पर पहुँचने के वाद ही इसको त्यागना है, यह ध्यान मे रखने की वात है। साथ ही यह भी ध्यान मे रखना है कि जिसने हमे इस किनारे पहुँचाया उस विचारी नाव को किनारे पहुँच कर कैसे छोड़े ? यह विचार करके उससे चिपके भी नही रहना है। किनारे पर पहुँचते ही उसे तुरन्त छोड देना है और अपने लक्ष्य की तरफ वढ जाना हे। अगर उस किनारे पहुचकर भी उस नाव मे ही बैठे रहे तो आपका जो लक्ष्य है—चरम मोक्ष की प्राप्ति उसे आप प्राप्त नही कर सकेंगे जैसे जिस ध्येय से आप वहा जा रहे है मणि माणिक्य आदि के लिये उन्हे प्राप्त नही कर सकेंगे। क्योकि मणि माणिक्य या मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करना है इसलिए किनारे पर पहुँचते ही हमे नाव को छोड देना है। किनारे पहुच कर लकड़ी की नाव को छोड देगे तो भव्य भवन रूप मोक्ष मे पहुच जावेगे।

तो जिस तरह से पत्थर की नाव को तो शाश्वत रूप से त्याग कर देना है और लकडी की नाव को ग्रहण कर लेना है। लडकी की नाव को ग्रहण करते हुए भी अन्त मे उसे भी छोड देना है उसी तरह से हमारे जीवन के ध्येय को हमे प्राप्त करने मे सहायक रूप पुण्य को तो ग्रहण करना है और डुवाने रूप पाप को पहले ही सर्वथा छोट देना है। ध्येय की प्राप्ति पर पहुचने पर पुण्य को भी छोड़ कर

अपने गन्तव्य की ओर चल देना है। इससे स्पष्ट है कि पुण्य, मोक्ष प्राप्ति की साधना मे सहायक रूप है,लक्ष्य नही है,वह समर्थ सहकारी कारण सामग्री के अन्तर पेटे मे है, उपादान नही, केवल निमित्त मानकर उसे ग्रहण करना है। उपादान की प्राप्ति पर निमित्त को छोड देना है। पर अगर कोई पुण्य और पाप दोनो को त्याज्य मानकर पुण्य को मार्ग के वीच मे ही त्याग दे तरग आने पर तो क्या होगा ? क्या यह उस प्राणी के लिए उचित होगा ? जिस प्रकार समुद्र के वीच मे नाव को नही त्यागा जा सकता उसी प्रकार सहायक रूप पुण्य को भी मोक्ष प्राप्ति की साधना की चरम परिणति तक नही त्यागा जा सकता।

अगर किसी ने पुण्य को वीच मे ही छोड़ दिया जैसे कि नाव को उस आदमी ने तरग मे आकर समुद्र के वीच मे त्याग दिया तो आप सोचिए कि उसकी क्या दशा होगी ? स्पष्ट है वह समुद्र के बीच मे ही डूब जावेगा। तो विवेकी पुरुष ऐसा कदापि नही करेगा। विवेकी पुरुष तो किनारे पर पहुचने पर ही उसे त्यागेगा। अब किनारे पर भी पहुच गया पर वहा नौका को पकड कर वैठ जाए तो लक्ष्य पर नही पहुच सकेगा, नाव मे ही बैठा रहेगा। इस प्रकार जैसी उस नौका की स्थिति है, ठीक वैसी ही पुण्य की स्थिति समझिए। यह स्थिति जानने योग्य है,साधना की अवस्था तक ग्रहण करने योग्य है। यह इसका शास्त्रीय अर्थ है। पुण्य का कूल यानि किनारे पर पहुचने अर्थात् १४वे गुणस्थान की अवस्था मे पहुचने पर ही त्याग करना है।

तो ये तीन अवस्थाएँ वताई हैं। पत्थर की नही, लकडी की नाव मे वैठना है। वीच समुद्र मे उसे नही छोडना है, किनारे पर पहुचने के वाद उसमे वैठे नही रहना है।

स्वर्ग की कामना का अर्थ

एक वात ज्ञानियो ने और वताई है। आप कहेगे ५॥

कर्मयुक्त है उसे कर्म रहित निर्मल और ब्रह्म रूप बनाने के लिए शरीर की स्थिति जो पुण्य की प्रकृति है वह साधन रूप है, यह मान लिया इस प्रकार पुण्य भी साधनरूप है, यह भी मान लिया। पर आगे जो ज्ञानियो ने यह कहा कि—

सग्ग कामए

यह स्वर्ग की कामना करने की वात कैसे कही जा रही है ? तो मैं बताना चाहता हू कि इसके पीछे भी एक शास्त्रीय रहस्य है जो हमे समझना है। इसमे भी स्पष्ट कहा है कि स्वर्ग की आकाक्षा मोह दशा के कारण नही करनी है। आशक्ति उसमे भी नही रखनी है। पर स्वर्ग की कामना एक तरह से इसलिए की जाती है कि इसमे भी विश्राम लेने की कभी-कभी आवश्यकता पड सकती है। विश्राम स्थल के रूप मे इसकी कामना की जाती है।

आप इसे इस तरह से समझ लीजिए कि एक व्यक्ति है। उसे कलकत्ता जाना है। वह कलकत्ता हवाई जहाज से उड़ कर जा रहा है। पर एक ही उडान मे हवाई जहाज कलकत्ता नही जा सकता, इसके लिए वह बीच मे किसी शहर के हवाई अड्डे पर थोड़े बहुत समय के लिए विश्राम हेतु रुकता है और थोडे समय विश्राम करके फिर उड चलता है और कलकत्ता पहुचता है।

पर अगर वह यात्री बीच मे पडने वाले हवाई अड्डे पर पहुंच कर यह सोचने लगे कि यहा बडे अच्छे विशाल भवन है, सभी तरह की सुख सुविधाए, यहा बडा सुन्दर विश्राम गृह सरकार ने बना रखा है, तो ऐसे सुन्दर स्थान को छोडकर अब क्यो आगे जाऊ, यही रह जाऊ तो अच्छा है। यह सोचकर अगर वही रह जाता है तो अपने गन्तव्य स्थान पर नही पहुँच सकेगा, पर अगर वह यह सोचे कि यह तो केवल विश्राम स्थल है, भले ही बडे-बड़े विशाल भवन क्यो न हो, सभी तरह की सुख सुविधाए क्यो न हो, मुझे तो अपने लक्ष्य पर पहुचना है, कलकत्ता ही पहुँचना है,

यह सोचकर जितनी देर हवाई जहाज ने वहा विश्राम लिया उतनी देर तक ही विश्राम करके हवाई जहाज मे बैठकर कलकत्ता के लिये प्रस्थान कर गया तो कलकत्ता पहुच जावेगा। जितनी देर वह वहा रहता है उतनी देर तक उस भव्य भवन मे विश्राम करता है और उसी दृष्टि से उसकी कामना भी करता है तो वह जैसे भवनो की कामना करता हुआ भी कलकत्ता ही पहुचता है। इसी प्रकार केवल इस विश्राम की दृष्टि से शास्त्रकारो ने कहा है—"सग्ग कामए"

इसका इतना ही अर्थ समझिये कि विश्राम स्थल पर थोडा विश्राम ले ले, अपनी यात्रा की थकान उतार ले और फिर अपनी यात्रा अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति हेतु शुरू कर दे।

इसी हेतु आगे कहा है—मोक्ष कामये।

मोक्ष की कामना लेकर चलता है और बीच मे विश्राम कर लेता है अत यह आकाक्षा इससे सम्वन्धित है इसलिये त्याज्य नही है।

अव कोई यह प्रश्न करे कि मोक्ष की आकाक्षा करने मे और अर्थ और काम की आकाक्षा करने मे क्या अन्तर है ?

जहा मोक्ष की आकाक्षा करना प्रकाश है वहाँ अर्थ और काम की आकांक्षा करना अन्धकार है अभिलाषा करने का तात्पर्य अराजकता की इच्छा करना नही है। मोक्ष की अभिलाषा रखते हुए अर्थ और काम मे उलझ जाता है तो वह अपने तक कैसे पहुचेगा ? अपने चरम लक्ष्य को कैसे प्राप्त करेगा ?

अव कोई आगे चलकर कहे कि यह क्या आकाक्षा लगा रखी है। हमे कोई किसी तरह की आकाक्षा नही तो यह भी कसे हो सकता है ? एक व्यक्ति जयपुर जैसे शहर उधर परिभ्रमण कर रहा है। इधर-उधर पथभ्रष्ट-सा हीन होकर भटकता फिर रहा है, उसे कोई पूछता है कि इधर-उधर क्यो

कहाँ जाना चाहते हो ? अगर इसके उत्तर मे वह यह कहे कि यह तो मुझे मालूम नही। तो उसे आप क्या कहेगे कि यह तो पागल मालूम होता है।

वैसे ही इस जीवन मे रहते हुए आपसे अगर पूछा जावे कि आपका लक्ष्य क्या है, आप कहा जाना चाहते है, क्या करना चाहते है तो आप तत्काल उत्तर देंगे कि हम अपने जीवन को इस तरह से सस्कारित करना चाहते है कि जिससे 'किं जीवनम्' जीवन क्या है इसके हल को ढूँढ सकें और ढूँढ कर उस पर आचरण करते हुए उसके अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। यह भी आशा है इसको दूसरे शब्दो मे कामना कह सकते है। जैसा कि तीर्थंकर भगवान के लिए **नमोत्थुणं** मे पाठ आया है **सम्पविउओ कामाण** यानि मोक्ष को प्राप्ति की कामना रखने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवान के लिए भी कामना का विशेषण लगा है तो नीचे के साधको के लिए कोई आपत्ति नही है।

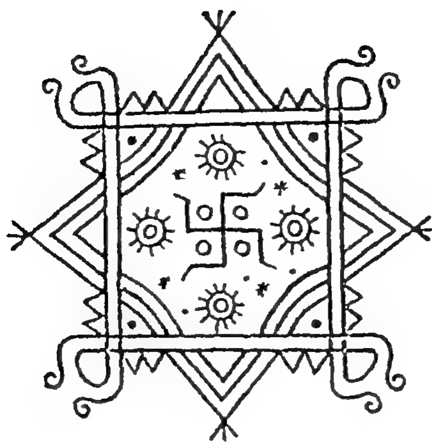
पर, इसके विपरीत आप यह कह बैठे कि हमारा तो कोई ध्येय नही है, तो क्या विना ध्येय के आप भी पागल की तरह यह सब क्रियाएँ कर रहे है ? इस तरह से बिना ध्येय की क्रियाएँ करने से क्या लाभ होगा ?

प्राणी अगर निश्चित ध्येय के साथ चलता है और अपना एक व्यवस्थित कार्यक्रम बनाता है, तो मोक्ष की भी वह अभिलाषा रख सकता है। आसक्ति के साथ वह अर्थ और काम से ही वधा नही रहता, मोह-जनित लगाव उसका उससे नही रहता। वह बीच के समय मे कदाचित् वह काम और अर्थ को भी आकाक्षा करता है, तो परिवार के प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन आदि के लिये करता है, और मोक्ष और धर्म के अन्तरपुट मे उनको रखकर चलता है। गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए भी मर्यादित जीवन, सुसस्कारित जीवन बिता

रहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सही रूप मे उपासना आकाक्षा करते हुए अन्तर मन मे धर्म और मोक्ष का पुट देता हुआ, सुसस्कारित जीवन विता रहा है, तो उसकी यह प्रार्थना सार्थक है। जैसा मैं पूर्व मे उच्चारण कर आया हू कि—"धर्म काम धन मोक्ष इत्यादि मन वाछित सुख पूरो।"

आज की स्थिति पर जब हम विचार करते है तो लगता है—आज दुनियाँ मे व्यक्ति की स्थिति एक मरीज की स्थिति जैसी वन रही है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट कर लें एक रोगी अत्यन्त पीडित था। अन्दर मे दाह ज्वर लग रहा था और ऊपर से भी चमडी जल रही थी। ऐसा मरीज एक विचक्षण वैद्य के पास पहुँचा। उसने अपनी सारी शारीरिक स्थिति रखते हुये कहा—वैद्यराज जी, ऐसी दवा दीजिये, जिससे मेरा अन्दर का दाह भी समाप्त हो जाय और वाहर की जलन भी समाप्त हो जाय। वैद्यराज जी वडे अनुभवी थे। उन्होने चार पुडियाये वनाई और उन चार पुडियाओ मे दो सुवह शाम लेने के लिये कहा—भाई ये दो पुडिया तो शहद मे मिलाकर सुवह शाम मे ले लेना और ये दो पुडियायें जिसको पानी मे घोलकर सुवह भी लेप लगायें और शाम को भी लेप कर लेना। इन चारो पुडियाओ को लेने से तुम्हारी वाह्य और आभ्यन्तर पीडा समाप्त हो जायेगी। मरीज को विश्वास था। उसने चार पुडिया ग्रहण की और घर पर पहुचा। घर पहुचकर शहद लेने की दृष्टि से वह अन्दर गया और शहद लाया, किन्तु जो पुडिया शहद मे लेने की थी उसको उसने पानी मे घोलकर लेप कर लिया और जो पुडिया पानी मे घोलकर लेप करने की थी उसको उसने शहद मे मिलाकर पेट मे ले लिया। चमडी पर लेप करने की और शहद मे अन्दर मे लेने की पुडिया को वह भूल गया और विपरीत दशाओ मे पुडिया को ग्रहण किया। इससे जो अन्दर की जलन थी वह और भी वढ गई और जो

बाहर की ताप की स्थिति थी वह भी अत्यधिक उग्र हो गई। उसने सोचा शायद एक पुडिया से ऐसा हो गया है दूसरी पुडिया और ले लूँ तो इसी तरह शाम को भी विपरीत दशा मे पुडियाये ले ली— जो खाने की थी उसका लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद मे मिलाकर चाट लिया। इससे इतनी बीमारी वढ गई कि रात्रि शान्ति मे नही वीती। उसने सोचा रात्रि मे मैं मनुष्य लोक मे हू या नही हू इतनी वेदना उसको सताने लगी। प्रात काल वह फिर वैद्यराज जी के पास पहुचा और अपना हाल कहने लगा। वैद्यराज जी वडे अनुभवी थे। वीमारी का हाल सुनकर और सारी स्थिति का अध्ययन कर पूछा—कौन कौनसी पुडिया किस किस प्रकार ली है? तो उसने वताया कि अमुक अमुक प्रकार ली है। वैद्यराज जी समझ गये कि मरीज ने उल्टी पुडियाये ले ली है। जो पुडिया खाने की थी उसका चमडी पर लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद मे डालकर खा लिया इसलिये तुम्हारा रोग वढ गया है। वैद्यराज जी ने दुवारा उसे चार पुडियाये दी और ठीक प्रकार समझा दिया जव वह दुवारा दवा को उचित विधि से यथास्थान लेता है तो उसका रोग मिट जाता है। यह एक रूपक है। आज भी इसी प्रकार प्राणी यतियो और साधुओ के पास अपने जीवन के प्रश्न को हल करने के लिये—धार्मिक जीवन बिताने के लिये, पहुँचता है। सन्त महात्मा भी यही कहते है कि दो पुड़िया को अन्दर में लो और दो पुडियाओ का वाहर में लेप करो। लेकिन लेने वाले क्या कर रहे है? उनको उल्टी-सीधी ले लेते है। ये चार पुड़ियाये हमारे पास कौन सी है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पुडियाये है। अब इन चार पुडियाओ मे से दो पुडिया जो धर्म और मोक्ष की है वह अन्दर मे लो, शहद के साथ जिससे सारा जीवन पवित्र बने ओर सस्कारित जीवन बने और



परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

को

सुयाणं धम्माण ओगिण्हणयाए उवधारणयाए अब्भुट्ठेयव्व भवइ। — स्थानाग सूत्र

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने, उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए।

---

५ | बंधुत्व भावना

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक ने तू धणी।
अब तौंसु गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभु, जगजीवन अन्तर्यामी।
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी॥

बन्धुओ, यह चन्द्र प्रभु भगवान की प्रार्थना है। आपके सामने प्रार्थना का जो शाब्दिक परिवर्तन आ रहा है,वह कविता का भी परिवर्तन है। लेकिन प्रभु के गुणो का,भगवान की शक्ति का, भगवान के पवित्र स्वरूप का परिवर्तन नही है। परमात्मा के चरणो मे हम कैसे भी शब्दो से प्रार्थना करे,प्रार्थना की पक्तिया हिन्दी कविता के रूप मे हो, सस्कृत भाषा मे हो, प्राकृत, इग्लिश या अन्य उर्दू फारसी आदि किसी भी भाषा मे क्यो न हो, इस भाषा के आवरण के पीछे प्रभु को विस्मरण नही करना चाहिए। भाषा के पर्दे को हटा कर परमात्मा के निखालिस स्वरूप को देखने की आवश्यकता है।

जय भगवान को या भक्त को ?

प्रभु के लिए विशेषण दिया गया है कि "जय जय जगत शिरोमणि", हे जगत के शिरोमणि, यहाँ जगत को एक शरीर माना गया है, उसके सिर की कल्पना की गई और उसके ऊपर मणि के रूप मे प्रभु को याद किया गया है। जो जगत् के सिरमोर है, जगत के स्वामी है उस स्वामी की जय चाही गई है। लेकिन सोचने का विषय है कि क्या कवि प्रभु की जय बोले तब उनकी जय होगी और प्रभु की जय न बोले तो भगवान की जय नही होगी। इस कल्पना से यदि कोई सोचता है तो यह सोचना ठीक नही है ? भगवान की तो सदा जय है। आपके जय बोलने से उनकी जय होगी और आपके जय नही बोलने से उनकी जय नही होगी यह बात नही है। कवि या भक्त भगवान की जय बोलता है तो वह भगवान की नही, बल्कि अपनी जय चाहता है। कभी-कभी हिन्दुस्तान की जनता भारत की जय बोलती है। भारत क्या है ? भारत देश है या भूमण्डल है या भारत के अन्दर रहने वाली जनता है। आप सोचेंगे कि भारत की जय के पीछे भारत सरकार की जय नही है लेकिन भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जय है। जैसे भारत की जय मे भारतवासियो की जय आती है, और पाकिस्तान की जय बोलने से पाकिस्तानवासियो की जय मानी जाती है ऐसे ही अमेरिका, इग्लैंड आदि विभिन्न देशो की जय विभिन्न सरकारो की जय, वहा की जनता की जय समझी जाती है। आप सोचिए यह तो एक एक देश की सरकार की जय है, लेकिन भगवान के राज्य मे कौन सा देश है। हिन्दुस्तान है या पाकिस्तान, अमेरिका, इग्लैंड, रूस, जापान क्या है, भगवान के राज्य मे समग्र देश है। एक दृष्टि से भगवान तो समग्र के अन्दर बैठे हुए है। समस्त संसार प्रभु की छत्रछाया के नीचे

की जय बोलने से एक एक की जय



जीवन को सद्संस्कार और सद्विचार

से

पावन करने वाली सत वाणी

सबके लिए सुखद हो !





पूनमचंद बोथरा (कपडे के व्यापारी)
पथारवाडी
(जि कछार, आसाम)

सस्कारित जीवन वनकर जीवन क्या है इस प्रश्न का हल हो सके। वाकी की जो दो पुडियाएँ हैं—अर्थ और काम की, इनको ऊपर लेप के रूप मे लें। परन्तु आज की दुनिया उल्टी चल रही है। काम और अर्थ की पुडियाओ को अन्दर लिया जा रहा है, उसके अन्दर ग्रस्त होते जा रहे हैं और धर्म और मोक्ष की पुडियाओ का लेप लगाया जा रहा है। धार्मिक कहलाने वाले पुरुष भी विचारक वर्ग के लिए आलोचना का विषय वन रहे है। इसीलिए आज धर्म भी आलोचना का विषय वन जाता है। आज वडे आदमी चोर वाजारी करते है, चोरी से अपना व्यापार करते है। ऊपर से धार्मिक वनते हैं अन्तर मे अधार्मिक भावनायें हाती है। इसलिये हमे यथार्थता की भूमि मे जीवन का चिन्तन करना है और जीवन के प्रश्न को हल करना है। कि वास्तव मे जीवन क्या, है ? यह प्रश्न भी तभी हल होगा जव आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वास्तविक विधि को समझेंगे।

लालभवन
२३ जुलाई १९७२



सुयाणं धम्माण ओगिण्हणयाए उवधारणयाए
अब्भुट्ठेयव्व भवइ । — स्थानाग सूत्र

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने, उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए ।

---

५ | बंधुत्व भावना

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक नै तू धणी ।
अब तौंसु गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी ।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभु, जगजीवन अन्तर्यामी ।
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी ॥

बन्धुओ, यह चन्द्र प्रभु भगवान की प्रार्थना है। आपके सामने प्रार्थना का जो शाब्दिक परिवर्तन आ रहा है,वह कविता का भी परिवर्तन है। लेकिन प्रभु के गुणो का,भगवान की शक्ति का, भगवान के पवित्र स्वरूप का परिवर्तन नही है। परमात्मा के चरणो मे हम कैसे भी शब्दो से प्रार्थना करे,प्रार्थना की पक्तिया हिन्दी कविता के रूप मे हो, सस्कृत भाषा मे हो, प्राकृत, इग्लिश या अन्य उर्दू फारसी आदि किसी भी भाषा मे क्यो न हो, इस भाषा के आवरण के पीछे प्रभु को विस्मरण नही करना चाहिए। भाषा के पर्दे को हटा कर परमात्मा के निखालिस स्वरूप को देखने की आवश्यकता है।

जय भगवान की या भक्त की ?

प्रभु के लिए विशेषण दिया गया है कि "जय जय जगत शिरोमणि", हे जगत के शिरोमणि, यहां जगत को एक शरीर माना गया है, उसके सिर की कल्पना की गई और उसके ऊपर मणि के रूप मे प्रभु को याद किया गया है। जो जगत् के सिरमोर है, जगत के स्वामी है उस स्वामी की जय चाही गई है। लेकिन सोचने का विषय है कि क्या कवि प्रभु की जय बोले तब उनकी जय होगी और प्रभु की जय न बोले तो भगवान की जय नही होगी। इस कल्पना से यदि कोई सोचता है तो यह सोचना ठीक नही है ? भगवान की तो सदा जय है। आपके जय बोलने से उनकी जय होगी और आपके जय नही बोलने से उनकी जय नही होगी यह बात नही है। कवि या भक्त भगवान की जय बोलता है तो वह भगवान की नही, बल्कि अपनी जय चाहता है। कभी-कभी हिन्दुस्तान की जनता भारत की जय बोलती है। भारत क्या है ? भारत देश है या भूमण्डल है या भारत के अन्दर रहने वाली जनता है। आप सोचेंगे कि भारत की जय के पीछे भारत सरकार की जय नही है लेकिन भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जय है। जैसे भारत की जय मे भारतवासियो की जय आती है, और पाकिस्तान की जय बोलने से पाकिस्तानवासियो की जय मानी जाती है ऐसे ही अमेरिका, इग्लैंड आदि विभिन्न देशो की जय विभिन्न सरकारो की जय, वहा की जनता की जय समझी जाती है। आप सोचिए यह तो एक एक देश की सरकार की जय है, लेकिन भगवान के राज्य मे कौन सा देश है। हिन्दुस्तान है या पाकिस्तान, अमेरिका, इग्लैंड, रूस, जापान क्या है, भगवान के राज्य मे समस्त देश है। एक दृष्टि से भगवान तो सबके अन्दर बैठे हुए है। समस्त ससार प्रभु की छत्रछाया के नीचे है। एक एक देश की, सरकार की जय बोलने से एक एक की जय

होती है और अन्य देश की पराजय इसमे चाही जाती है, लेकिन भगवान की जय बोलने से समग्र विश्व की जय चाहे और सारे ससार के अन्दर रहने वाले प्राणियो की जय समझे, तभी वह भगवान की जय बोल सकता है। जो व्यक्ति भगवान की जय बोल करके यदि यह चाहे कि प्रभु, मैं आपकी जय बोल रहा हू, मै आपका भक्त हू, आप मेहरबानी करना, मैं पडौसी के साथ लड रहा हू इसलिए आप मददगार हो करके पडौसी की पराजय करना और मेरी जय करना। इस भावना से अगर जय बोल रहे है तो आपने प्रभु के स्वरूप को नही समझा है और आपने सासा रक तौर पर भगवान को अपने साथ घसीट लिया है।

आज के अधिकाश मनुष्य प्रभु को एक तरह का खिलौना समझ रहे है। थोडी सी कठिन परिस्थितिया सामने आई और झट से भगवान को याद कर लिया। जरा कभी किसी व्यक्ति से टकराहट हो गई, लडने लगे कि झट से भगवान को पुकारने लगे—भगवान आइए, आइए, यह मेरे से दुश्मनी कर रहा है, इसको खत्म करिए और कदाचित् दूसरा भी भक्त हो और भगवान को वह भी पुकारे कि भगवान आइए,मुझसे लडने वाले को खत्म करिए तो कहिए क्या होगा? दोनो भगवान के भक्त और भगवान रह गया एक, अगर भगवान आए तो किसकी मदद करे। इस तरह से भगवान को घसीट करके मनुष्य राग द्वेष की परिणति मे डाल देता है और भगवान का दुरुपयाग करने को तैयार होता है जैसा कि उनका चित्त, मानस वन गया है। वह अपने घर के अन्दर वस्तुओ के टुकडे करता है,मकान का विभाग करता है और अन्य चीजो को बाटता है, जमीन के साथ साथ मोहल्ले और गाव के टुकडे करता है और इसमे भी वह सतोष नही पाता तो वह भगवान को भी टुकडो मे वाटना चाहता है। भगवान को भगवान के सही स्वरूप मे न समझ करके उनको टुकडे-टुकडे के अन्दर वाट कर भगवान को एक पक्ष मे लाकर खड़ा

कर देता है वह भक्त नही है, वह वस्तुतः भगवान की जय बोलने का अधिकारी नही है। भगवान की जय बोलने का अधिकारी वही है कि जिसने समग्र संसार को भगवान के राज्य मे माना है और समग्र संसार मे रहने वाले प्राणियो के प्रति वह अपना आत्मीय भाव रखता है और उनके साथ भी यथाशक्ति, यथासम्भव समभाव रखने की चेष्टा करता है, और एक परिवार के रूप मे सारे ससार को देखने का प्रयास करता है, वही व्यक्ति भगवान की जय बोलने का सच्चा अधिकारी है।

बन्धुओ, यह जो प्रार्थना का प्रसग चल रहा है, वह हमारे मस्तिष्क के विकारो को सुलझाने के लिए है। प्रार्थना के अन्दर कभी कभी कवि भावावेश मे आकरके कविता के प्रसग मे वह अपनी लघुता व्यक्त कर देता है। जैसे कि उसमे कहा है—

जय जय जगत् शिरोमणि, हूँ सेवक नें तूँ धणी।
अब तोशूँ गाढ़ी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ म्हेर करो, चन्द्र प्रभु जग जीवन अतरजामी।
भव दुःख हरो, सुणिए अज हमारी त्रिभुवन स्वामी।

कवि ने प्रभु के ऊपर उत्तरदायित्व डाल दिया है कि भगवन! आप सिरमौर हैं मैं आपकी जय बोल रहा हू। आप स्वामी है और मैं सेवक हू। इसलिए सेवक का उत्तरदायित्व आप पर है। बहुत मजबूरी के साथ आ गया हू। सेवक की आशा की पूर्ति करना यह आपका काम है और भवसागर से पार करना भी आप के अधीन है। इस कविता के माध्यम से भक्त ने सब कुछ अपना उत्तरदायित्व परमात्मा के चरणो मे रख दिया है। लेकिन आज का युग जैसा सोचने का अभ्यासी है वैसे ही उसकी कल्पना भी दौडती है। तो इस दृष्टि से हमे सोचना होगा कि क्या कोई भी भगवान की सेवा मे बैठकर भगवान के नाम की कुछ कडियो का उच्चारण करदे, भगवान के नाम की माला फेर करके निश्चिन्त होकर बैठ जावे, कि

होती है और अन्य देश की पराजय इसमे चाही जाती है, लेकिन भगवान की जय बोलने से समग्र विश्व की जय चाहे और सारे ससार के अन्दर रहने वाले प्राणियो की जय समझे, तभी वह भगवान की जय बोल सकता है। जो व्यक्ति भगवान की जय बोल करके यदि यह चाहे कि प्रभु, मै आपकी जय बोल रहा हू, मै आपका भक्त हू, आप मेहरबानी करना, मैं पडौसी के साथ लड रहा हू इसलिए आप मददगार हो करके पडौसी की पराजय करना और मेरी जय करना। इस भावना से अगर जय बोल रहे है तो आपने प्रभु के स्वरूप को नही समझा है और आपने सासारिक तौर पर भगवान को अपने साथ घसीट लिया है।

आज के अधिकाश मनुष्य प्रभु को एक तरह का खिलौना समझ रहे है। थोडी सी कठिन परिस्थितिया सामने आई और झट से भगवान को याद कर लिया। जरा कभी किसी व्यक्ति से टकराहट हो गई, लडने लगे कि झट से भगवान को पुकारने लगे—भगवान आइए, आइए, यह मेरे से दुश्मनी कर रहा है, इसको खत्म करिए और कदाचित् दूसरा भी भक्त हो और भगवान को वह भी पुकारे कि भगवान आइए,मुझसे लडने वाले को खत्म करिए तो कहिए क्या होगा? दोनो भगवान के भक्त और भगवान रह गया एक, अगर भगवान आए तो किसकी मदद करे। इस तरह से भगवान को घसीट करके मनुष्य राग द्वेष की परिणति मे डाल देता है और भगवान का दुरुपयोग करने को तैयार होता है जैसा कि उनका चित्त, मानस बन गया है। वह अपने घर के अन्दर वस्तुओ के टुकडे करता है,मकान का विभाग करता है और अन्य चीजो को बाटता है, जमीन के साथ साथ मोहल्ले और गाव के टुकडे करता है और इसमे भी वह सतोष नही पाता तो वह भगवान को भी टुकडो मे बाटना चाहता है। भगवान को भगवान के सही स्वरूप मे न समझ करके उनको टुकडे-टुकडे के अन्दर बाट कर भगवान को एक पक्ष मे लाकर खडा

कर देता है वह भक्त नहीं है, वह वस्तुतः भगवान की जय बोलने का अधिकारी नहीं है। भगवान की जय बोलने का अधिकारी वही है कि जिसने समस्त संसार को भगवान के राज्य में माना है और समस्त संसार में रहने वाले प्राणियों के प्रति वह अपना आत्मीय भाव रखता है और उनके साथ भी यथाशक्ति, यथासम्भव समभाव रखने की चेष्टा करता है, और एक परिवार के रूप में सारे संसार को देखने का प्रयास करता है, वही व्यक्ति भगवान की जय बोलने का सच्चा अधिकारी है।

बन्धुओ, यह जो प्रार्थना का प्रसंग चल रहा है, वह हमारे मस्तिष्क के विकारों को सुलझाने के लिए है। प्रार्थना के अन्दर कभी कभी कवि भावावेश में आकरके कविता के प्रसंग में यह अपनी नम्रता व्यक्त कर देता है। जैसे कि इसमें कहा है—

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक ने तूँ धणी।
अब तोसूँ गाढ़ी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ म्हेर करो, चन्द्र प्रभु जग जीवन अंतरजामी।
भव दुख हरो, सुणिए अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी।

भगवान मेरी सब कामनाए पूरी कर देगे, तो मैं समझता हू कि यह बहुत ही सस्ता रास्ता मान लिया गया है। हाथ हिलाने की आवश्यकता नही है, पुरुषार्थ करने की जरूरत नही, इधर उधर कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नही है, इस भावना से यदि इन्सान चलेगा तो वह न प्रभु के स्वरूप को ठीक से समझ पाएगा और न अपने जीवन की समस्याओ को ही हल कर पाएगा। इस प्रकार सोचने से मनुष्य का जीवन परतन्त्र वन जाता है और परतन्त्रता के अन्दर वह अपने जीवन के स्वतत्ररूप को भूल जाता है। यहा इस प्रार्थना की कडियो मे भी आपको चिन्तन करना है। भगवान को हम स्वामी मान रहे है और सेवक की स्थिति से चिंतन कर रहे हैं, इसका इतना ही तात्पर्य लेना है कि, प्रभु, मैं इस वक्त कर्मो से युक्त हू, कर्मों से आवद्ध हू, कर्मों की जजीरो से जकडा हुआ हू, मैं ससार के जेलखाने का कैदी हू, इस वक्त मैं आपकी तरह से स्वतन्त्र नही हू, आप सदा के लिए स्वतन्त्र बन चुके है, इसलिए मैं इस परतन्त्रता के वन्धनो से मुक्त होकर, इस ससार के जेलखाने से निकल कर आपकी वरावरी के यानी आपके तुल्य शक्ति को सम्पादित करू और अपने जीवन के चरम विकास को प्राप्त करू। इस भावना से मैं आपके चरणो मे इच्छा व्यक्त करता हू कि मैं आपका सेवक हूँ और इस भव सन्तति से पार होना चाहता हू। मै यह नही चाहता हू कि मैं सेवक हू तो सदा के लिए सेवक ही रहू। मैं कभी स्वामी नही वन सकू गा, इस भावना का सोचना मनुष्य के लिए हितावह नही है। यह भावना मनुष्य के मन मे वन जावे कि स्वामी सदा स्वामी ही रहेगा और सेवक सदा सेवक ही रहेगा तो सेवक के लिए कभी भी उन्नति होने का प्रसग नही होगा जव कि उनके मस्तिष्क मे यह भाव आवे कि मैं भी स्वामी वन सकता हूँ, वगर्ते कि अपने प्रयत्नो से, अपने जीवन को ठीक तरह से समझ करके उसी ढग का पुरुपार्थ करू जिससे कि

स्वामी बना जाय। इस प्रकार मस्तिष्क ऐसी उच्चभावना का बने और इस भावना का संस्कार यदि मनुष्य के मस्तिष्क में हो तो मनुष्य उन्नति पथ पर आगे बढ़ सकता है, किन्तु जब ऐसे संस्कार नहीं रहते हैं तो वह हतोत्साहित होकर मानसिक घुटन का अनुभव करता हुआ सदा के लिए मन मसोस कर बैठा रहेगा और कभी भी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुच पाएगा।

अर्थवादी दृष्टि :

शास्त्रकारों ने यह बतलाया है कि तू भले ही अपनी लघुता व्यक्त कर ले। भले ही सेवक बन जाय लेकिन विश्वास इस प्रकार का दृढ़ रख कि मैं भगवान के तुल्य बन सकता हूं। मेरे अन्दर भी वह भावना है, मेरे अन्दर भी वह शक्ति है, और मैं भी एक दिन उस पद के योग्य बन सकता हूँ। हां, इस प्रकार का उत्साह जब मनुष्य के मस्तिष्क में आता है तो पुरुषार्थ के क्षेत्र में अपनी गति तीव्र कर देता है और जब सच्चे पुरुषार्थ की ऐसी स्थिति बने तभी जीवन का सही निर्माण हो सकता है, लेकिन वह जीवन के सही रूप को समझे और सही दिशा का अनुसरण करे तभी वह आगे बढ़ सकता है। लेकिन जब जीवन क्या है इसका भी उसको पता नहीं। कि जीवनम् ? इस प्रश्न का हल उसके पास में नहीं है तो कैसे वह विकास करेगा जिस स्थिति में वह आगे बढ़ेगा ? आज मैं आपके सामने जो प्रश्न उपस्थित कर रहा हूं कि जीवन क्या है इस विषय में आपको हमको और सबको सोचना है। यह विषय क्या है इसके सोचने के विषय में जब चलते हैं तो आज कुछ मनुष्य जिनका दृष्टिकोण संसार के पदार्थों की ओर लगा हुआ है वह प्रश्न कर बैठता है, कह जाता है—

कि आपातरम्य जीवनम् ?

'अर्थाधिकार स्वंस्थानां ममत्वेव'

"आप जीवन के प्रश्न को हल करना चाहते है लेकिन जीवन की आवश्यकता ही क्या है ? जीवन की कुछ आवश्यकता हो तो हम समझे। आज तो आवश्यकता अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की है। अर्थ के विना ससार नही चल सकता है। आप अर्थ की बात करिये कि अर्थ को कैसे बढाये, धन की बात करिये, पैसे की बात करिये, व्यापारिक बात करिये। इसके विषय मे हमको समझाइये कि कैसे अधिक से अधिक धनवान बने। इसकी आवश्यकता को तो हम महसूस करते है लेकिन इसको छोडकर जीवन का प्रश्न सामने ला रहे है वह हमारी समझ मे नही आता है। जीवन का यह व्यर्थ का प्रश्न क्यो सामने आ रहा है ?" ये विचार प्रश्न उन व्यक्तियो के हो सकते है जिनकी बुद्धि का विकास आगे नही हो रहा है, जिन्होने धन को ही जीवन समझ लिया है, जिन्होने पैसे को ही सव कुछ समझ लिया है, और पैसे को जिन्होने भगवान मानकर अपने आपको पैसे का सेवक समझ लिया है, ऐसे व्यक्तियो के जीवन का वर्णन स्वर्गीय आचार्य श्री कविता मे इस प्रकार किया करते थे कि—

पैसा मेरा परमेसर, लुगाई मेरी गुरु,
छोराछोरी सालिगराम सेवा थारी करूँ।

वे व्यक्ति समझते है कि इस ससार मे यदि कोई सार तत्व है तो वह पैसा ही है, पैसा ही मेरा परमेश्वर है। पैसे से वढकर और कोई परमेश्वर नाम का तत्व नही है, पैसे से वढकर कोई जीवन नहीं है, पैसा ही सव कुछ है। साथ ही अन्य किसी गुरु की भी आवश्यकता नही होती है क्योकि वह हमारे घर मे ही है जिनको जग की साक्षी से पत्नी वनाया है वही गुरु है, वह जो कुछ कह दे उसके अनुसार चलना है, और छोरा-छोरी वाल-वच्चे सालिगराम है इनकी सेवा करना है।" इस प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति क्या यह प्रश्न उठायेगे ? कि हमारा जीवन क्या है ? और

जीवन की आवश्यकता क्या है ? अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की आवश्यकता तो हम महसूस करते हैं, लेकिन जीवन की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं, क्योंकि पैसा मिल जाता है, और पैसे के लिए यदि जीवन की भी कुर्बानी करनी पड़े तो हम तैयार हैं, अर्थ के लिए जीवन को होम देने के लिए हम तैयार हैं। जीवन को समझने की आवश्यकता हमें नहीं है। हम को तो पैसे को समझने की आवश्यकता है। आज उनका दृष्टिकोण अर्थ प्रधान बना हुआ है, सत्ता व सम्पत्ति को ही वे सब कुछ समझ कर चल रहे हैं। यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि सत्ता और सम्पत्ति के पीछे अगर जीवन होम दिया जाय, जीवन में खून की नदियां बहानी पड़ें तो वे बहाने को तैयार हैं। जीवन की उन्हें परवाह नहीं है। वे सत्ता और सम्पत्ति की परवाह करते हैं। सत्ता और सम्पत्ति का जो यह लक्ष्य बना हुआ है, क्या यह उस लोकोक्ति के तुल्य नहीं है।

इसी दृष्टिकोण के कारण आज संसार के अन्दर त्राहि-त्राहि हो रही है। आज मनुष्य के जीवन को जीवन नहीं समझा जा रहा है। उसे खिलौना समझा जा रहा है चलते हुए मनुष्य का खून कर दिया जाता है, मनुष्य का कत्लेआम होता है। केवल इस सत्ता और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अधिकांश देश बड़ी से बड़ी सेना तैयार करके, बड़े से बड़े शस्त्रों का आविष्कार करके, अणु बम फेंक कर एक दूसरे को नष्ट करने के प्रयास में लगे हुए हैं, इस प्रकार की बीभत्स भावना संसार में न मालूम कौन सा ताण्डव नृत्य उपस्थित करेगी इसका कुछ कहा नहीं जा सकता। आज कुछ ऐसे ही परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बड़े बड़े शस्त्रों का परीक्षण हो रहा है। इसके पीछे सत्ता और सम्पत्ति का भूत सवार है, जीवन को उन्होंने गौण कर दिया है, चाहे आप अमेरिका को देखिये चाहे चीन को देखिये और चाहे दूसरे देशों को देखिये, मालूम है कि हमारे पास शस्त्रास्त्र बहुत है, वहीं पर लड़ाई छिड़ ज,

तो जमीन रहने को मिल जाय,उनको जनसख्या भी युद्ध आदि के प्रसग से कम होजाय तो उन्हे परवाह नही,लेकिन सत्ता औरसम्पत्ति चाहिए। इस दृष्टिकोण को लेकर जो मनुष्य चलते है वे क्या जीवन के प्रश्न को समझने की कोशिश करेगे ? जीवन के महत्व का अकन करेगे ? जो जीवन को जीवन नही समझते है। जीवन को मिट्टी का ढेला मात्र समझते है वे जीवन की परिभाषा नही समझ सकते है। इधर जो ऊपर से आध्यात्मिक जीवन की बाते करते है पर अन्दर मे उनके भी ऐसे ही विचार रहे तो कह सकते है कि वे भी जीवन की वास्तविक परिभाषा को नही समझ सकेंगे,पर यादरखिए यदि वे जीवन के स्वरूप को ही नही समझ पायेगे तो सत्ता और सम्पत्ति को भी स्थायी रूप से नही पा सकेंगे। क्योकि कहा गया है—जीवन के बिना अर्थ व्यर्थ है, सत्ता व्यर्थ है, और जीवन के बिना कर्तव्य भी क्या हो सकता है। अत जीवन का स्वरूप समझना नितान्त आवश्यक बन जाता है।

धन, यही धरा रहेगा

सिकन्दर ने अपने जीवन मे सत्ता और सम्पत्ति को बटोरने के लिये मनमाने कर्तव्य बनाये और लूट-पाट की। जनता को बहुत पीडा पहुँचाई। फिर भी सत्ता और सम्पत्ति से अपने आप को मृत्यु के मुँह से बचा नही पाया। मृत्यु के समय वह हाय-हाय करके चिल्लाने लगा। कि कोई मुझे मृत्यु से बचाने वाला मिल जाय तो जितनी सम्पत्ति मैंने एकत्रित की है वह मै देने के लिए तैयार हू, लेकिन कोई भी व्यक्ति उसको मृत्यु से नही बचा सका। उसको बचाने वाला कोई नही मिला। तो आप सोचिये कि जीवन के स्वरूप को उसने नही समझा इसलिए दुनिया को तबाह करके जब गया तो खाली हाथ ही गया। तब उसने यह कहावत चरितार्थ कर दी और उसने अपने साथियो से कहा कि जब जनाजा निकालो तो आप मेरे दोनो हाथ

बाहर रखना, ताकि दुनिया देखे कि सिकन्दर सब कुछ लेकर आया था लेकिन अब जा रहा है तो खाली हाथ वह जा रहा है,हाथ फैलाकर जा रहा है। यह उसके जीवन से शिक्षा की स्थिति आज प्रत्येक मनुष्य पर लागू होती है। मनुष्य जब माता की कुक्षी से बाहर आता है या शिशु हालत में आता है ? उसकी मुट्ठी बन्द होती है। मुट्ठी बन्द क्यों है,यह कुदरत की रचना है,लेकिन शिक्षा के दृष्टिकोण से यह समझता है कि मुट्ठी में कुछ लेकर आया है, पूर्व जन्म से पुण्यवानी अर्जित करके मुट्ठी बाँध कर आया, और इस जन्म में धीरे धीरे उस पुण्यवानी को खर्च करके मानो मुट्ठी खोल कर हाथ फैलाकर जा रहा है अर्थात् जब मृत्यु का प्रसंग आता है, मरने की घड़ी आती है तो खाली हाथ जाता है। यानी पूर्व जन्म की पुण्यवानी लाया था वह खर्च करके यहां जीवन से हाथ धोकर जा

ही वन गये है। चाहे कितना ही सुन्दर और ऊँचा किला हो लेकिन हवाई जहाज के जरिये एक बम उस पर फेक दिया जाए तो वह भस्मीभूत हो जाता है।

आज इन किलो की दशा क्या है? मनुष्य उस समय कितना दानव बन कर सत्ता और सम्पत्ति के लिए अपने जीवन को न्योछावर करने चला, लेकिन उसने इस प्रश्न को हल नही किया कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? उन्होने जीवन की आवश्यकता को महसूस नही की। जब ऐसे-ऐसे सत्ताधीशो की भी यह स्थिति है तो आज के मनुष्य की स्थिति उनके सन्मुख क्या है? आज भी करोडो की सम्पत्ति है, अरबो-खरबो की सपत्ति है, इससे भी क्या होने वाला ह। इससे जीवन का क्या बनने वाला है? यदि जीवन को नही समझा गया तो इस अरबो-खरबो की सम्पत्ति से कुछ होने वाला नही है। यह सम्पत्ति व्यर्थ है। जिस समय आँख बन्द होगी उस समय अरबो की सम्पत्ति भी पास मे पडी रह जाएगी वह पुन जीवन नही दे सकती। इसी दृष्टि से मनुष्य के लिए कहा गया है कि—

'असखयं जीविय मा पमायए'

जीवन असस्कृत है प्रमाद मत करो और जीवन के सच्चे स्वरूप को समझो। क्योकि वास्तविक जीवन के विना सभी प्रपच व्यर्थ है। जीवन है तो सव कुछ है, जीवन नही है तो कुछ भी नही है। इस दृष्टि से आपको अपने जीवन का प्रश्न हल करने के लिए अपने आपको देखना पडेगा और अपने जीवन की कडियो को उस परिभाषा के साथ जोडना पडेगा। अपने जीवन की गुत्थियो को सुलझाना है तो जीवन मे आने वाले प्रसगो पर भी दृष्टिपात करना होगा। यह जीवन परिवार समाज व राष्ट्र से सम्बन्धित है अत तत्सम्बन्धी कर्तव्य भी हमारे सामने है आज परिवार समाज व राष्ट्र की क्या-क्या प्रमुख समस्याए ह। उन समस्याओ का

हल भी यथास्थान लेना होगा जहाँ परिवार है वहाँ परिवार की दृष्टि से सोचना होगा और जहाँ समाज, राष्ट्र आदि की दृष्टि है वहाँ उस दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है, तथा जहाँ जीवन की समस्या है वहाँ जीवन के धरातल पर ही सोचा जा सकता है। इसी तरह सामाजिक क्षेत्र के भी हमारे कुछ कर्तव्य हैं। समाज में रहने वाले व्यक्तियों के साथ हमारे कैसे व्यवहार हों, उनके प्रत्येक सामाजिक कार्यों में हम किस रूप में उपस्थित हों क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति से भिन्न समाज नाम का कोई तत्त्व नहीं है अतः प्रति व्यक्ति से भ्रातृत्व भावना का व्यवहार करने का प्रयास किया जाए तो इस पर जीवन का सही रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। भले ही वह सामाजिक सदस्य किसी स्थिति में क्यों न हो, चाहे वह आर्थिक दृष्टि से कितना ही कमजोर क्यों न हो। दुनिया की दृष्टि में भले ही वह गरीब हो पर हमारे सम्मुख पैसे की अपेक्षा,उसके जीवन की विशेष कीमत है, इस प्रकार अर्थ दृष्टि को गौणकर जीवन का अंकन करके यदि समाज के छोटे से छोटे व्यक्ति से आप प्रेम करते हैं, छोटे से छोटे व्यक्ति को भाई समझते हैं तो वही वास्तव में जीवन है। लेकिन आज होता क्या है? समाज के अन्दर भी प्रायः वही हिटलरशाही चल रही है। छोटे व्यक्तियों का तिरस्कार करते हैं, पैसे के जोश में, पैसे के आवेश में दूसरे व्यक्ति को कुछ भी नहीं समझते। मैं सोचता हूँ कि आज सामाजिक स्थिति में भी मनुष्य की कीमत पैसे से आंकी जा रही है। आज जिसके पास अधिक पैसा है वह समझता है कि मैं ही सब कुछ हूँ, वह फूला नहीं समाता है प्रसंग आने पर तारीफ भी उसकी ही होती कि वाह साहब बड़े पैसे वाले हैं किन्तु वह पैसे वाला कम पैसे वाले की कदर करने लग जाय तो आप चिन्तन कीजिये उसकी प्रतिष्ठा घट जाएगी? इस मान्यता द्वारा ढोंग इतना [illegible] लोग होकर भी बिना पैसे वालों की कदर कम करते हैं। आज

अगर हमें अपने जीवन की समस्याओ को हल करने के साथ साथ सामाजिक समस्याओ को भी हल करना है तो जीवन के वास्तविक स्वरूप को सामने रख कर ही हल करना होगा। यदि आप अपने यहा किसी भाई को काम पर रखते है तो उसकी तरफ भी ध्यान देना होगा कि यह भी मेरे लिए सहायक है। उसके जीवन की कीमत करके, उसको सम्मान देकर, भाई के नाते समान स्थिति मे देखने का अभ्यास करना होगा यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि किसी से काम लेना है तो बडे प्रेम के साथ, स्नेह के साथ लिया जा सकता है तिरस्कार के साथ नही। अगर भेद-भाव करे तो उसका परिणाम कभी अच्छा नही आ सकता। इसी प्रसग मे मुझे बीकानेर के एक श्रावक मालूजी की बात याद आती है जिनके पास पैसा तो बहुत था लेकिन वे पैसे के पीछे अपने जीवन को नही भूल गए थे। वे बीकानेर के अन्दर रहते और जब कभी सतो का प्रसग होता, चाहे छोटे सत हो या बडे हो लेकिन नियमित रूप से व्याख्यान मे भो उपस्थित होते। वडे सतो के व्याख्यान मे जाय तो समझना चाहिए कि इसमे कोई विशेषता की बात नही है लेकिन छोटे सतो के व्याख्यान मे भी प्रतिदिन उपस्थित होना और वडे ध्यान से व्याख्यान श्रवण करना इन छोटे सतो को इज्जत देना है। और इसके साथ साथ व्याख्यान श्रवण करने के पश्चात् जव कि व्याख्यान समाप्ति पर सब लोग उठ जाते है तो अधिकाशत यह देखा जाता है कि अपने समान पक्ति वाले व्यक्ति से मिलते है। उन समान पक्ति वालो मे भी वात होती है, जयजिनेन्द्र साहव, मुजरा साहब, पधारिए साहव। यह किन से करेगे, समान पक्ति वाले से। जो पैसे वाले हैं वे पैसे वालो से ही मिलेगे।

माया से माया मिले कर कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीव की कोई ना पूछे बात।

यह गरीवी भी क्या जीवन के अन्दर एक ग्रह के रूप मे आगई

है। इस [illegible] को हटाने के लिए भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिराजी कुछ [illegible] नारा लगा रही हैं कि गरीबी हटाओ। लेकिन गरीबी हटाने के लिए नारों से काम चलने वाला नहीं है। इस गरीबी के कारण को समझ कर उसको दूर करने के लिए जब तक मानव जीवन का मूल्यांकन नहीं होगा तब तक गरीबी का प्रश्न हल होना दुश्वार सा लग रहा है। इन्सान का जीवन क्या है, जिन्दगी क्या है, इसको समझे बिना गरीबी का प्रश्न हल नहीं होगा। इस प्रश्न को हल करने के लिए जब तक राजनैतिक नेताओं के मस्तिष्क में, समाज के नेताओं के मस्तिष्क में और समाज के बच्चे-बच्चे के मस्तिष्क में यह विचार नहीं आयेगा कि समाज के धरातल पर रहने वाला प्रत्येक मानव अपने अपने जीवन का महत्त्व अंकन करे और मैं भी उसके समान हूँ अतः उसके अनुकूल व्यवहार करूँ तब तक यह प्रश्न हल होने वाला नहीं है। आज की स्थिति तो यह बन रही है कि जहाँ कोई बड़ा आदमी सामने आया उसको ही महत्त्व दिया जाता है। बड़ा समझने का भी एक मापदण्ड बन गया है। या तो कोई अधिक धन वाला हुआ तो उसको महत्त्व देंगे, या फिर कोई ऊपरी [illegible] के साथ आ गया तो, भले ही उसका आचरण कैसा भी क्यों न हो लेकिन स्वच्छ सुन्दर पोशाक पहन कर सभा में आकर बैठ गया तो कहेंगे पधारिए साहब! इधर पधारिए। यह पीछे बैठा तो नहीं बैठने देंगे, उसको आगे बैठायेंगे। पूछेंगे आप कहाँ से पधारे हैं। आगे बढ़कर उनसे हाथ मिलायेंगे। किन्तु यदि उसी जगह कोई सामान्य वेशभूषा वाला व्यक्ति सादी पोशाक में आ जाता है तो उसकी ओर सम्भवतः कम ध्यान देंगे और अगर पास में बैठेगा तो उसको [illegible] मान कर पीछे करने के लिए [illegible] कि कहाँ आगे आ गया है।

एक प्रेरक आदर्श

[illegible] की बात कह रहा था। [illegible], सभा में

बैठते तो धनवानो की ओर विशेष ध्यान नही देते । उनकी दृष्टि मे गरीब साधर्मी नजर आ जाता तो उससे जाकर मिलते । जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता उनकी तरफ बढते, मुजरा करते, उनसे हाथ मिलाते और उनके कन्धे पर हाथ धर देते । वह तो फूला नही समाता – अरे सेठ साहब, इतने बडे आदमी और इतना धर्म करने वाले आज मेरे ऊपर इतने मेहरबान हो गए कि कन्धे पर हाथ धर दिया, इस प्रकार वह फूला नही समाता है । वे उनको एकान्त मे ले जाते और पूछते कि क्या हाल है । घर के सदस्यो की क्या दशा है । आपके जीवन की क्या परिस्थिति है । जब वे अन्तर्मन से एकान्त मे पूछते तो वह दिल खोल कर सेठ साहब के सामने अपनी परिस्थिति रखता कि सेठ साहब यह दशा है । एक कमाने वाला हूँ और दस खानेवाले है । सामाजिक कुरीतियो ने चूर-चूर कर दिया है, मैं पिसा जा रहा हूँ । समाज के अन्दर कोई सुनने वाला नही है । पैसे वालो के सामने आदमी के जीवन की कीमत नही है । मनुष्य मनुष्य को भिन्न समझता है । ऐसी दुर्दशा हो रही है क्या सुनावे । आप आज मेरे बराबरी के बन कर समान स्तर पर पूछ रहे है यह आपकी महानता है, पैसेवाले होकर आप मेरे जीवन की चिन्ता कर रहे है इसलिए मैंने भी आपके सामने सारी बाते खोल कर रख दी है । वे उसको सान्त्वना देते कि ये दिन और यह दशा भी रहने वाली नही है । मेरे घर पर बहुत छाछ होती है, गाय भैसे बहुत हैं तुम अपने बच्चो को छाछ लेने के लिए भेज दिया करो । तो वह कहता—सेठ साहब इतने रोज तो सकोच के कारण नही भेजा, गरीब आदमी ठहरे, कही बडे घर मे छाछ के लिए भी तिरस्कार हो जाय । धनी लोग गरीबो को छाछ देने मे भी आनाकानी करेगे और देगे भी तो पानी मिला कर दे देंगे । अब तो छाछ का प्रसग भी नही रहा, छाछ आज तो देखने को भी कई स्थानो पर कम ही मिलती है लेकिन प्राचीन काल के अन्दर छाछ मुफ्त मे बाटी जाती थी । आज

भारत की वह दशा नही रही कि हर जगह छाछ मिल सके, लेकिन उस समय वह बात नही थी। वे कहते सेठ साहब, अब तक संकोच वश नही भेजा अब आपकी मेहरवानी हो गई है तो भेज देंगे। जब बच्चे को छाछ लेने भेजते तो सेठ साहब नौकर चाकरो के भरोसे नही रहते। वह गरीब घर का व्यक्ति आया है, नौकर उनको गरीब घर का समझ छाछ देने मे आनाकानी नही कर दे, इसलिए स्वय बैठते, उसे अपना भाई समझते, वल्कि अपने वरावर तुल्य समझ कर स्वय छाछ अपने हाथ से देते। एक वर्तन लेकर वैठ जाते और उसके साथ ही पैसो की, रुपयो की थैली लेकर भी वैठते और जब कोई बच्चा छाछ लेने के लिए आता तो उसके हाथ से लोटा ले लेते और उस बच्चे को किसी वहाने से अन्दर भेज देते कि देखो अमुक क्या कर रहा है। और उसके वाद थैली मे से मुट्ठी भर कर रुपये उसमे डाल देते और फिर छाछ भर देते और कहते कि ले जाओ। घर तुम अपने माता पिता को देना, अन्य को नही। वह बच्चा जाकर लोटा अपने माता पिता को देता। वे छाछ खाली करते जब उसमे रुपये निकलते तो वे भागे-भागे जाते, सेठ साहब, सेठ साहब, आपके रुपये इसमे आ गए। सेठ साहब कहते—वोलो मत, ये मेरे नही तुम्हारे ही है। यह मेरे साथ चलने वाला नही है, तुम भी मेरे साधर्मी भाई हो। इस प्रकार उन्होने कइयो का उद्धार कर दिया, कइयो को वरावरी का वना दिया। इस प्रकार का उनका जीवन चल रहा था लेकिन आज का जीवन कुछ और है। कोई गरीब आ जावे, गरीब तो दूर कोई साधु सन्त भी आ जावे तो भी शायद सेठ साहव को ध्यान देने की फुरसत नही मिले। या तो नीचे से ही आवाज दे देंगे कि महाराज आए है और उसमे भी महाराज की अलग-अलग कीमत करेंगे। एक सेठजी के दुकान और मकान एक ही जगह थे। ऊपर मकान और नीचे दुकान थी। वे नीचे ही बैठे रहा करते थे। जब सन्त आते तो वे देखते कि

अमुक सन्त आए है तो दासी को नीचे से ही सकेत कर देते, उसको पहले से ही सकेत समझा रखे थे, नीचे से आवाज देते, बाई महाराज आए है रोटी देना, फुलका बैराना। वह भी समझती थी कि सेठ साहब ने फुलका बैराने के लिए कहा है अर्थात् सेठ जी जब एक वचन मे फुलका बैराने के लिये कहते तो वह एक ही फुलका देती और जब वे बहुवचन मे फुलका बैराने के लिये कहते तो व' दो या दो से अधिक फुलके देती। इस प्रकार उनकी मानस की यह भेद पूर्ण स्थिति थी। चाहे घर मे कितनी ही सामग्री हो, एक क्या कितने ही फुलके बैरा दे तो भी कोई फर्क पडने वाला नही है लेकिन फिर भी इस प्रकार की स्थिति इस युग मे चल रही है। आज जो साधु सन्तो के साथ भी ऐसा वर्ताव कर सकते है वे अपने सहधर्मी भाइयो के साथ क्या वर्ताव करेगे। आज नौकर चाकरो के साथ क्या वर्ताव किया जा रहा है। मै सुनता हूँ, नौकर चाकरो के साथ समता का वर्ताव नही होता। वे काम बहुत करते है लेकिन फिर भी उनके साथ भेदभाव का वर्ताव होता है, उनके जीवन के साथ खिलवाड किया जाता है जिससे उनके मन के अन्दर विद्रोह की भावना पैदा होती है और जिसके भयकर परिणाम समाज के सामने आ रहे है।

वन्धुओ, यह स्थिति क्या है, क्या इससे जीवन का प्रश्न हल हो सकता है। आज भी इस धरातल पर इस प्रकार की चीजे चल रही हैं। मालूजी और दूसरे भी ऐसे सेठ साहूकार हुए है जो जोवन मे वहुत कुछ ऊँचे उठे है और जिन्होने समाज का और अपना उत्थान किया है। आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहव के सामने ऐसा प्रसग आया था। मालूजी आचार्यश्री के पास वैठे हुए थे, उस समय ऐसा जिक्र चल गया कि मालूजी आप तो पैसेवाले है फिर भी आपके सामने पैसे की इतनी कीमत नही, इन्सानियत को आप अधिक महत्व दे रहे है और जीवन का सही अकन कर रहे है।

अमुक सन्त आए है तो दासी को नीचे से ही सकेत कर देते, उसको पहले से ही सकेत समझा रखे थे, नीचे से आवाज देते, बाई महाराज आए है रोटी देना, फुलका बैराना। वह भी समझती थी कि सेठ साहब ने फुलका बैराने के लिए कहा है अर्थात् सेठ जी जब एक वचन मे फुलका बैराने के लिये कहते तो वह एक ही फुलका देती और जब वे बहुवचन मे फुलका बैराने के लिये कहते तो व' दो या दो से अधिक फुलके देती। इस प्रकार उनकी मानस की यह भेद पूर्ण स्थिति थी। चाहे घर मे कितनी ही सामग्री हो, एक क्या कितने ही फुलके बैरा दे तो भी कोई फर्क पडने वाला नही है लेकिन फिर भी इस प्रकार की स्थिति इस युग मे चल रही है। आज जो साधु सन्तो के साथ भी ऐसा वर्ताव कर सकते है वे अपने सहधर्मी भाइयो के साथ क्या वर्ताव करेगे। आज नौकर चाकरो के साथ क्या बर्ताव किया जा रहा है। मैं सुनता हूँ, नौकर चाकरो के साथ समता का बर्ताव नही होता। वे काम बहुत करते है लेकिन फिर भी उनके साथ भेदभाव का वर्ताव होता है, उनके जीवन के साथ खिलवाड किया जाता है जिससे उनके मन के अन्दर विद्रोह की भावना पैदा होती है और जिसके भयकर परिणाम समाज के सामने आ रहे है।

बन्धुओ, यह स्थिति क्या है, क्या इससे जीवन का प्रश्न हल हो सकता है। आज भी इस धरातल पर इस प्रकार की चीजे चल रही है। मालूजी और दूसरे भी ऐसे सेठ साहूकार हुए है जो जोवन मे बहुत कुछ ऊँचे उठे है और जिन्होने समाज का और अपना उत्थान किया है। आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के सामने ऐसा प्रसग आया था। मालूजी आचार्यश्री के पास बैठे हुए थे, उस समय ऐसा जिक्र चल गया कि मालूजी आप तो पैसेवाले है फिर भी आपके सामने पैसे की इतनी कीमत नही, इन्सानियत को आप अधिक महत्व दे रहे है और जीवन का सही अकन कर रहे है।

आचार्यश्री ने कहा कि [illegible] जीवन [illegible] जीवन को [illegible] । [illegible] पीछे [illegible], आप सम्पत्ति का अनुसंधान करके जीवन को [illegible] । इस प्रकार [illegible] आचार्यश्री ने [illegible] दिया कि [illegible] । [illegible] सम्पत्ति का [illegible], [illegible] सम्पत्ति को [illegible] समझता है [illegible] भी जीवन के [illegible] । इसलिए आचार्यश्री कहते हैं कि [illegible] । [illegible] जीवन का [illegible] सकता है, [illegible], सम्पत्ति और अधिकारों से ऊपर समझता है । [illegible] जीवन की [illegible] परिभाषा को अच्छी तरह समझ चुके हैं ।

विवेक से काम लो

यहाँ एक प्रसंग याद आ गया । एक श्रावक था भक्त था, नाम का मतलब यह है कि वह अपने आप में निष्ठा रखता था, जीवन की कीमत को पहचानता था और स्टॉक मार्केट आदि के कार्य न करके सीधा व्यवसाय करता था अतः जगत की दृष्टि में वह बहुत साधारण था । शहर के बाहर एक बगीचे में झोंपड़ी बनाकर रहता था । संयोग-वश उसकी पत्नी का देहान्त हो गया वह अपने पीछे एक पुत्री छोड़ गई । वह पुत्री जब बड़ी होने लगी तो उसे ही संस्कार दिये, और जीवन की कला सिखाई गई । उसने पुत्री से कहा कि हमारा जीवन एक महत्वपूर्ण जीवन है । यह जीवन संसार के विषय भोग के लिए नहीं है, पशु पक्षियों की तरह से बिताने के लिए नहीं है । हमें साधना करते हुए चलते रहना है आदि । किन्तु समय की स्थिति से

उम्र बढती है तो शरीर का भी विकास होता है। जव कन्या बड़ी हुई तो भक्त सोचने लगा कि किसके यहा इसका विवाह किया जाय। किसी के सामने वह विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तो पहले पैसे की बात होती है। पैसा कहाँ से लाये ? और कहा उसका विवाह करे ? आखिर मे उसने यही तय किया कि मेरी पुत्री को मैने इतने सारे सस्कार दिये है तो विना विवाह के वह ब्रह्मचारिणी का जीवन क्यो न बिताये। अगर उसका यह निर्णय हो जाय तो मेरा जीवन धन्य होगा। मैं इस पुत्री के लिए कोई सौदेबाजी नही करूगा। जैसी स्थिति है उस स्थिति मे कोई ईमानदारी से मेरे जीवन का अकन करेगा। यदि किसी ने मेरे जीवन को नही समझा तो मुझे परवाह नही। पिता यह सोचकर निश्चिन्त हो गया। एक रोज एक करोडपति सेठ घूमने की दृष्टि से बगीचे की ओर को निकला। उसका स्वभाव सुन्दर था उसके जीवन की स्थिति बडी पवित्र थी। वह यह जानता था "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।" उसने उस कन्या को देखा वह उस कन्या के गुणो का अकन करता है और उसके जीवन की कीमत करता है। यह सोचकर कि इस झोपडी मे कैसी स्थिति है। वह घूमना छोडकर झोपडी के पास पहुचा। उसने सारी परिस्थिति जानी, और परिस्थिति समझने के पश्चात् उसके मन मे आया कि इसके पिता के पास एक समय के भोजन का भी सग्रह नही है लेकिन इसका पिता जीवन के मूल्याकन को लेकर के चल रहा है और यह सत्ता और सम्पत्ति के पीछे दीवाना नही है। मै सपदा का मालिक हू। मेरी दृष्टि मे अगर जीवन नही रहा और केवल सपदा रही तो मेरा जीवन भी बेकार है। इसलिए मुझे तो जीवन की कीमत करना है इस प्रकार विचार किया और मन मे दृढ विश्वास कर लिया कि इस गुणवान कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र के साथ हो जाय तो सब प्रकार की सुनिधि प्राप्त हो जाय। इस प्रकार की भावना लेकर अपने स्थान पर पहुचा और मुनीम से कहा कि उस झोपडी मे रहने वाले

के पास जाकर मेरे पुत्र के लिये उसकी कन्या की मांगनी करो। इधर सेठ साहब शाम को घर गये तो सेठानी से बात की कि आज घूमने के लिए गया तो एक मूर्तिकार का था। मैंने दर्शन किये वह कन्या कन्या-जीवन में निखर रहा है और मेरे पुत्र के लिए उपयुक्त है। इसलिए उस कन्या को इस घर में लाया जाय ताकि इस घर की शोभा बढ़ जाय। सेठानी ने कहा कि सेठ साहब आप किस कन्या को लाना चाहते हैं, वह कौन है? सेठजी ने कहा कि उसका पिता शहर के बाहर बगीचे में झोंपड़ी बनाकर रहता है। वह गरीब व्यक्ति है? सेठानी ने कहा—मेरे पुत्र का सम्बन्ध उसके साथ करना चाहते हैं? क्या शहर में और करोड़पति नहीं हैं और अन्य कन्याएँ नहीं हैं? कुछ तो सोचना विचारना चाहिए। कन्या चाहे पैसे लिये इसकी परवाह नहीं, लेकिन लाना चाहिए। यह भावना किस की थी? सेठानी की। लेकिन उनके मन में न तो जाति का अहंकार बस रहा था और न पैसे का। उसकी दृष्टि सीधी जीवन की तरफ थी। सेठ ने कहा कि मुझे पैसा नहीं चाहिए, मुझे जीवन चाहिए, उन्होंने खूब जोर दिया और कहा कि तुम चाहे कुछ करो मैं अपने पुत्र की शादी इसी कन्या से करूंगा। आखिर सेठानी की चली नहीं। उन्होंने जब मुनीम को भेजा तो उस कन्या के पिता ने कहा कि देखिये—आजकल धनवानों और गरीबों की जाति अलग-अलग बनती जा रही है। गरीबों की जाति अलग और धनवानों की जाति अलग। सेठ साहब मेरी कन्या की मँगनी कर रहे है, लेकिन मेरे पास देने को कुछ नहीं है, मिजमानी करने के लिए न होटल है न दूसरी चीजें। यहां जयपुर में बरात आये तो होटलों में ठहराई जाती है चाहे कितना ही खर्च लगे और जीमने के साथ-साथ बारातियों की कई तरह से और किस प्रकार सार-सम्भाल की जाती है। एक रोज थोड़ा सा मैंने सुना था उस सुनने से मुझे पता चला है कि पैसे वालों के हाल किस प्रकार से चलते हैं, मगर गरीबों के यहाँ विवाह के समय

क्या हालत होगी ? ऐसी हालत मे प्रश्न उत्पन्न होता है। "गरीबी हटाओ"। मगर यदि हमारा जीवन उस नारे के अनुरूप नही है तो गरीवी हटाने का अवसर जल्दी आना कठिन लगता है। तो उस कन्या के पिता ने भी यही कहा कि मेरे पास तो कु कू कन्या हाजिर है, मेरे पास देने को एक फूटी कौडी भी नही है। साथ ही उसने यह भी कहा कि बरात लेकर आते है तो जिमाने के लिए भी मेरे पास कुछ नही है। मैं तो पान सुपारी भी नही दे सकता हू। आप इस तरह की स्थिति से गरीब कन्या के साथ विवाह के लिए आये तो खुशी है। सेठ ने उसी ढग से विवाह किया। कुछ भी लेने की परवाह नही रखी। सेठ ने जीवन की कीमत की थी, पैसे की कीमत नही की। आज इस प्रकार का कोई भाई हे जो जीवन की कीमत करे और पैसे की नही करे ? बन्धुओ, ऐसी दशा के अन्दर हम जीवन का अकन कहा करते है ? कैसी समाज की स्थिति बन रही है, आज गुण-वान कन्याओ की स्थिति कैसी हो रही है। इसका गहराई से चितन करना है। उस गरीब कन्या के घर से जाने का जब प्रसग आया तो पिता ने विदाई देते हुए पुत्री को शिक्षा दी कि पुत्री मेरे पास पैसा तो नही है, लेकिन मैं गुणो की शिक्षा देना चाहता हू। जब सुसराल जाय तो वहा जाने के बाद अपनी इस अवस्था को भूलना मत। सुसराल मे मेरी सपदा को पास मे रखना। जितने भी उस घर मे मनुष्य हो, चाहे नौकर चाकर हो उनके साथ मे भाईचारे का बर्ताव करना, पैसे के मद मे किसी का तिरस्कार मत करना, पैसे के पीछे उनकी जिन्दगी की कीमत मत करना लेकिन जीवन के पीछे उनकी कीमत करना। उस कन्या ने हाथ जोडकर कहा,' 'पिता श्री, आपके वचन शिरोधार्य है। मुझे और सपदा नही चाहिए, आपकी सुशिक्षा रूपी सपदा ही चाहिए। उसने कहा, "पुत्री तू वहा जा रही है। वे करोडपति लोग है उनकी दशा को देखकर वहा पर जो गरीब लोग आये तो तिरस्कार मत करना, मीठे वचन बोलना, जीवन मे अपने

चरित्र को ऊँचा रखना और मनुष्य को मनुष्य समझकर आत्मकल्याण का रास्ता प्रस्तुत करना। जब इस शिक्षा को लेकर वह कन्या [illegible] के घर में पहुँची तो धन का अभिमान उसके मस्तिष्क में नहीं आया। वह पैसे की दृष्टि से इन्सान की कीमत नहीं करती—वह सारे जीवन की दृष्टि से उसका मूल्यांकन करने लगी, और आनन्द के साथ सेवा करते करते उसने कुछ बर्ताव किया कि उस घर के जितने भी लोग थे उनको अपने वश में कर लिया। आस पड़ोस में रहने वाले जितने प्राणी थे सब के सब आकर्षित हो गये। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति फैलने लगी कि गरीब घर की कन्या करोड़पति के घर में पहुँचकर किस प्रकार से मनुष्य जीवन का [illegible] करती है। तारीफ के पुल इधर-उधर से आने लगे। सास-ससुर अत्यन्त प्रसन्न थे। गरीबी और अमीरी का भेद मिटाते हुए उसने अपने जीवन के सौरभ से आस पास के अधिकांश लोगों को आकर्षित कर लिया। इन सब बातों को देखकर एक रोज उसकी सासू जी प्रसन्न होकर उससे कहने लगी कि पुत्री ये चाबिया अब तुम सम्हालो। उस समय उस पुत्र वधू ने कहा—सासूजीराज, चाबिया तो आपके पास ही रहें। मुझे तो इन चाबियों की आवश्यकता नहीं, जीवन की चाबिया चाहिए। आजकल की पुत्रवधुए यह बात बोलेंगी कि सासूजी, अब आपका बुढ़ापा हो गया है अब तिजोरियों की चाबी न रखें। खोलकर उनको सौंप देंगी तो ठीक और नहीं सौंपेंगी तो लड़ाई झगड़ा होगा। आज अधिकांश घरों की यही स्थिति है। सास-बहू लड़ रहे हैं, बाप-बेटे लड़ रहे हैं, भाई भाई लड़ रहे हैं। वही सासू तिजोरियों की चाबिया सौंपने लगी तो उसने नहीं ली। सासू जी ने आग्रह किया कि मैं वृद्ध हो गई हूँ और आगे के जीवन के लिए कुछ करूं मुझे तो तुम ऐसी शिक्षा दो कि मैं जीवन की कीमत करूं और जीवन क्या है इसको समझने का प्रयास करूं। यह सासू जी बोलने लगी। उसने कहा कि तिजोरी की चाबिया तो आप मुझे सौंप रही हैं लेकिन मेरी

जो बचपन की आदत है उस आदत के साथ मैं वरताव करूगी वह शायद आपको पसन्द आयेगा या नही आयेगा। क्या वरताव है तुम्हारा ? सासू जी ने पूछा! वरताव क्या है, यही है कि मैं अपने पिता के यहा बचपन से वडी हुई हूँ, तव तक मैंने अतिथि-सत्कार को नही भुलाया है। कोई भी व्यक्ति आया है उसका स्वागत के साथ मे सत्कार किया है। दान देने की आदत भी है। जव आप मुझे तिजौरी की चाबिया सौप रही हैं, और घर का अधिकार सम्हला रही है तो कोई व्यक्ति आयेगा तो मेरा हाथ उदार रहेगा। उसमे आपको नागवार तो नही गुजरेगा ? सासू जी को यह ख्याल आया और कहा कि दान देने लगी तो सारी सम्पदा चली जायेगी। उसने कहा कि सासूजीराज, आपने जीवन को नही समझा है और अपनी भौतिक सम्पदा को ही सव कुछ समझा है। सम्पदा यदि लुटा भी दू गी तो मेरा जीवन तो रहेगा, मुझे जीवन चाहिए सम्पदा नही चाहिए। सेठानी कहने लगी नही-नही मै इन वातो मे आने वाली नही हू। इसके लिए थोडे ही चाबिया सम्हला रही हू। किसी को देना मत, शर्माशर्मी उसने चाबिया सम्हाल ली, लेकिन वह एक अच्छी चीज नही थी।

एक रोज कुछ ऐसा अवसर बना कि सासूजी कमरे मे बैठी हुई अपने घर का कार्य कर रही थी। एक भिक्षुक साधू की पोशाक मे भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। उस भिक्षुक की दृष्टि उस मकान पर गई। करोडपति का घर था। सासू का कथन भी उसके ध्यान मे था लेकिन पिछले जीवन मे उसने जो शिक्षा ली वह महत्वपूर्ण थी [illegible] अपने पिता के यहा प्राप्त की थी। उसके [illegible] ा, आखिर अन्दर जो मिष्ठान्न आदि [illegible] साधू को दे दी। वह यह [illegible] भोजन चाहिए और [illegible] वह साधु नही है

जो बचपन की आदत है उस आदत के साथ मैं बरताव करूगी वह शायद आपको पसन्द आयेगा या नही आयेगा। क्या बरताव है तुम्हारा ? सासू जी ने पूछा ! बरताव क्या है, यही है कि मै अपने पिता के यहा बचपन से बडी हुई हूँ, तब तक मैंने अतिथि-सत्कार को नही भुलाया है। कोई भी व्यक्ति आया है उसका स्वागत के साथ मे सत्कार किया है। दान देने की आदत भी है। जब आप मुझे तिजौरी की चाबिया सौप रही है, और घर का अधिकार सम्हला रही है तो कोई व्यक्ति आयेगा तो मेरा हाथ उदार रहेगा। उसमे आपको नागवार तो नही गुजरेगा ? सासू जी को यह ख्याल आया और कहा कि दान देने लगी तो सारी सम्पदा चली जायेगी। उसने कहा कि सासूजीराज, आपने जीवन को नही समझा है और अपनी भौतिक सम्पदा को ही सब कुछ समझा है। सम्पदा यदि लुटा भी दू गी तो मेरा जीवन तो रहेगा, मुझे जीवन चाहिए सम्पदा नही चाहिए। सेठानी कहने लगी नही-नही मै इन बातो मे आने वाली नही हू। इसके लिए थोड़े ही चाबिया सम्हला रही हू। किसी को देना मत, शर्माशर्मी उसने चाबिया सम्हाल ली, लेकिन वह एक अच्छी चीज नही थी।

एक रोज कुछ ऐसा अवसर बना कि सासूजी कमरे मे बैठी हुई अपने घर का कार्य कर रही थी। एक भिक्षुक साधू की पोशाक मे भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। उस भिक्षुक की दृष्टि उस मकान पर गई। करोडपति का घर था। सासू का कथन भी उसके ध्यान मे था लेकिन पिछले जीवन मे उसने जो शिक्षा ली वह महत्वपूर्ण शिक्षा थी जो कि उसने अपने पिता के यहा प्राप्त की थी। उसके अनुसार उससे रहा नही गया, आखिर अन्दर जो मिष्ठान्न आदि सामग्री थी वह पर्याप्त मात्रा मे लेकर साधू को दे दी। वह यह जानती थी कि साधू को जीने के लिए थोडा भोजन चाहिए और मर्यादित वस्त्र चाहिए। साधू पैसा लेता है तो वह साधु नही है

जो बचपन की आदत है उस आदत के साथ मैं बरत
शायद आपको पसन्द आयेगा या नही आयेगा।
है तुम्हारा ? सासू जी ने पूछा! बरताव क्या है, यही
पिता के यहा बचपन से बडी हुई हूँ, तब तक मैंने उ
को नही भुलाया है। कोई भी व्यक्ति आया है उसक
साथ मे सत्कार किया है। दान देने की आदत भी है
मुझे तिजौरी की चाबिया सौप रही है, और घर का अधि
रही है तो कोई व्यक्ति आयेगा तो मेरा हाथ उदार र
आपको नागवार तो नही गुजरेगा ? सासू जी को यह
और कहा कि दान देने लगी तो सारी सम्पदा चली जा
कहा कि सासूजीराज, आपने जीवन को नही समझा है
भौतिक सम्पदा को ही सब कुछ समझा है। सम्पदा य
दू गी तो मेरा जीवन तो रहेगा, मुझे जीवन चाहिए
चाहिए। सेठानी कहने लगी नही-नही मै इन बातो मे
नही हू। इसके लिए थोड़े ही चाबिया सम्हला रही हू
देना मत, शर्माशर्मी उसने चाबिया सम्हाल ली, लेकिन व
चीज नही थी।

एक रोज कुछ ऐसा अवसर बना कि सासूजी क
हुई अपने घर का कार्य कर रही थी। एक भिक्षुक साधू
मे भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। उस भिक्षुक की दृष्टि
पर गई। करोडपति का घर था। सासू का कथन भी
मे था लेकिन पिछले जीवन मे उसने जो शिक्षा ली व
शिक्षा थी जो कि उसने अपने पिता के यहा प्राप्त की
अनुसार उससे रहा नही गया, आखिर अन्दर जो मि
सामग्री थी वह पर्याप्त मात्रा मे लेकर साधू को दे द
जानती थी कि साधू को जीने के लिए थोडा भोजन
मर्यादित वस्त्र चाहिए। साधू पैसा लेता है तो वह

सोचने दीजिए। वह सोचते भी स्थिति में मस्त हो गया। माता-पिता ने सोचा कि पुत्र गुणवान है, इसकी सहमति के बिना हम कोई काम नहीं कर सकते, आखिर यह सम्पन्न होगा तभी काम बनेगा यह समझ कर चुप हो गए।

इधर चिंतन चल रहा है और उधर आता। इस बीच वह अलग हो गया है। यहाँ भी अभी जीवन का प्रश्न चल रहा है, आप चाहते हैं कि यह प्रश्न जल्दी हल हो जाए और मैं भी चाहता हूँ कि जल्दी हल हो जाए, लेकिन जीवन को समझने के लिए, कुछ प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार की स्थिति आपके पंथ के साथ उठ गई है। देखिए उन व्यक्ति की स्थिति क्या बनती है, पति क्या सोचता है और सास और ससुर क्या सोचते हैं यह भविष्य के गर्भ में रहने दीजिए। अभी जो वर्तमान में प्रश्न चल रहा है, वह है आज के युग में जीवन की क्या आवश्यकता है। सत्ता, सम्पत्ति और कर्तव्य जीवन के बिना बेकार हैं और जीवन को कोमल करने के लिए, जीवन के स्वरूप को समझने के लिए, जीवन की परिभाषा करने के लिए जब आप आगे बढ़ोगे तो ही ये सत्ता, सम्पत्ति और कर्तव्य हितावह हो सकते हैं, नहीं तो ये उल्टा मार्ग धारण कर सकते हैं, उन्हीं भावनों के साथ कहा—

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक ने तू धणी,
अब तोसूं गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभु जगत जीवन अन्तर्यामी,
भव दुःख हरो सुनिए अज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी॥

ऐसी भावना के साथ जब हम अपने जीवन को समझ जायेंगे, जीवन के स्वरूप को समझ जायेंगे, सुन्दर जीवन जी सकेंगे इसी भावना के साथ इस प्रसंग को समाप्त करता हूं।

साहब की अनुमति लेनी चाहिए। सेठ साहब को बुलवा लिये। सेठ साहब के आते ही उनको आडे हाथो लिया, कहने लगी देखा, मैंने पहले ही कहा था कि ऐसे घर की छोकरी हमारे घर के योग्य नही है। इसने तो सारे घर का दिवाला निकाल दिया, एक साधु को कुछ दान दिया और साथ ही साथ गुप्त बाते की। तो सेठजी ने कहा कि अब क्या करना चाहिए? सेठाणी कहने लगी कि इसको घर मे नही रखना चाहिए। सेठजी ने कहा कि इसको पीहर भेज दे। तो बोली कि पीहर भेज देंगे तो वहाँ वह सारी बाते खोल देगी और इससे इज्जत खत्म हो जाएगी। तो क्या करना? क्यो नही इसको समाप्त ही कर दे। सेठ ने कहा कि समाप्त करना तो मेरे हाथ की वात नही है। जब तक पुत्र सहयोग नही दे तब तक इस विषय मे अपन क्या कर सकते है। तो कहा पुत्र को भी बुला लिया जाए अपन तीनो एकमत हो जावे। पुत्र को बुलाने के लिए भेजा गया वह भी उपस्थित हो गया। सम्पूर्ण वृतान्त सुना तो वह भी आश्चर्य मे पड गया। कुछ कह नही पाया, मौन होकर खडा हो गया और मनन चिंतन करने लगा कि भगवन्! मेरे पर कौन-सा धर्म सकट आ गया, पतिव्रता के रूप मे इसको मैंने देखा, सीता सती की उपमा दी, और आज भी दे रहा हू ऐसी कन्या के विषय मे इस प्रकार की वात क्यो कर सम्भावित हो रही है। मै प्रभु के चरणो मे हाथ जोड कर इस विषय मे मार्ग दर्शन चाहता हू। वह कुछ समय के लिए स्थिर हुआ। कुछ चिंतन करके अपनी मातेश्वरी और पिताजी से कहा कि आप भी कुछ चिंतन करिए और इस बात की ताकीद मत करिए। आप इस बात का चिंतन करिए कि क्या वात है, किस तरह से यह वात वनी है और उसने जो कुछ कहा तो क्या कहा। सारी वात का निर्णय निकाले विना सहसा कदम नही उठाना है। तो उन्होने कहा कि हमने सव कुछ निर्णय कर लिया। है तव पत्र ने कहा कि मैं भी कह रहा हूँ, मुझे भी थोड़ी देर

पन्ना समिक्खए धम्म —उत्तराध्ययन

अपनी निर्मल बुद्धि-प्रज्ञा से धर्म की परीक्षा-समीक्षा करनी चाहिए।

---

६ | सम्यग् निर्णय कीजिए

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो,
प्रभुता त्यागी राजनी हो,
लीधो सजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो,
पाम्या पद अविकार। श्री··

वन्धुओ,

यह हम श्री सुविधिनाथ भगवान् की प्रार्थना कर रहे है। भगवान् के नाम का सकलन भी किस ढग से बना है कि जिसमे यथार्थ अर्थ का द्योतन हो रहा है।

भगवान् सुविधि अथवा सु-विधि—इन शब्दो के साथ यदि सम्वन्ध जुडता है तो उससे प्रभु के अनुरूप अर्थ का द्योतन होता है। सुविधि यानि **सुष्टु सुन्दरार्विधिर्यस्य स सुविधि.**। इसका दूसरा अर्थ है सुन्दर विधि, अगर यह सुन्दर विधि हमारे जीवन मे प्रवेश कर जावे तो इस जीवन की तमाम समस्याएँ हल हो जावे। आज का मानव चल

आध्यात्मिक दृष्टि के महान् ज्ञाता गणधरो को भी भगवान् इस तरह से सम्बोधन करते है कि प्रमाद मत करो ! क्योकि तुम्हारा यह जीवन असस्कृत है तो इससे सहज ही साधारण साधु साध्वियो का चिन्तन तो मुखरित होना ही चाहिए। उन्हे अपने जीवन के लिये यह चिन्तन करना चाहिये कि हम साधु साध्वी के रूप मे चल रहे है। हमने घर बार का त्याग किया है, परिवार, स्त्री, पुत्र, पति, सम्पत्ति सब को विधि के साथ बोसराया हैं, और इसके साथ ही साथ हम साधना के क्षेत्र मे प्रवेश करके चल रहे हैं, लेकिन जिस रोज हमने यह वेष ग्रहण किया उस दिन से कही हमारे मन मे लापरवाही के सस्कार तो नही आ गये है ? हमने यह तो नही समझ लिया है कि अब हम मुनि बन गये है, पोशाक पहन ली है, अब तो हम भगवान् के तुल्य हो गये, कृत-कृत्य हो गये, अब हमे कुछ करना धरना नही है। इस तरह के सस्कार या विचार अगर साधु साध्वी के मन मे प्रवेश कर गये हो तो उन सस्कारो को भी असस्कृत रूप मे देखते हुए उनको भी निकालने का निरन्तर प्रयत्न करने का सम्बोधन वीतराग देव की वाणी से स्पष्ट झलक रहा है।

मै उचित सम्बोधन की बात को जितना ही अधिक ध्यान मे लाता हू उतना ही अधिक अन्तर मे अनेक तरह की तरगे उठती है। मस्तिष्क नाना रूपो से चिन्तन करने को तत्पर हो जाता है। सोचता हू, कि वीतराग देव ने समुच्चय रूप से यह जो सम्बोधन किया है उससे गणधरो को भी सावधान किया तो साधारण साधु साध्वी और श्रावक-श्राविकाओ को भी सावधान होने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है।

हम थोडा सा ज्ञान सम्पादन कर ले, उस ज्ञान के माध्यम से थोडा सा हमे बोलना आ जावे और हम अपने आपको कुछ औरो से ऊपर समझने लग जावे कि बस अब हमारे से बढकर ज्ञानी कोई

नही है । अव हमारे मे वटकर कोई वक्ता नही है, अव हमारे मे वटकर कोई विद्वान् नही है, मैं तो सव कुछ वन गया हू, अव कुछ करना धरना नही है तो उसके लिये भी भगवान का यह सम्वोधन है कि हे साधु, हे साधक, तू चार ज्ञान के धारक उस महाज्ञानी गणधर के तुल्य तो नही वन गया है अभी ! उसको भी जव भगवान् ने यह कहा है कि—

असखय जीविय मा पमायए, तू तो उससे वहुत नीचे की साधना के स्तर पर है, तू क्यो अभिमान करने लग गया है, अभी तेरा जीवन भी असस्कारित है, इसे सस्कारमय वनाने मे प्रमाद मत कर ! लापरवाह मत वन !

तो इस तरह अहकार की भावनाए मानव मे आना सहज है । ये भावनायें मानव स्वभाव के अनुसार साधक के अन्दर भी प्रवेश कर सकती हैं क्योंकि वह भी मानव है । जो श्रेष्ठ साधक हैं, उसमे सहसा भले ही प्रवेश न करे किन्तु उनके भी अज्ञात मस्तिष्क मे ये सस्कार किसी न किसी रूप मे अपना प्रभाव डालही देते हैं अत उस अज्ञात मस्तिष्क के सस्कारो को सस्कारित करने के लिए सम्वोधन है क्योंकि जीवन मे अहकार के अनेक प्रवेश द्वार होते हैं । कभी तपश्चर्या के प्रसग पर साधु तपश्चर्या करता है तथा कभी मासखमण करने वाले या अधिक तपश्चर्या करने वाले तपश्चरण करते हैं उस समय भी अभिमान की मात्रा आना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति मे वह भी यह सोच ले कि मेरे समान कोई तपस्वी नही है, मैं सवसे वडा तपस्वी हू, मेरे सामने कोई वोल नही सकता, वस वोलो मत, मैं कहू जिस तरह से करो, इस तरह की धमकी का प्रयोग साधारण लोगो पर करता है तो वीतराग की वाणी के अनुसार वह चाहे साधु है, तपस्वी है, लेकिन जीवन मे सस्कार पूरे नही हुए है, उसको भी असस्कारित जीवन की श्रेणी मे रखा जा सकता है । वैसे ही श्रावक और श्राविकाये अपने जीवन के

लेकर चल रहे है, अपने-अपने क्षत्र के अनुरूप, अपनी-अपनी शक्ति के साथ वे धार्मिक कार्य भी करते है। दान, शील, तप, भावना का प्रसग भी उपस्थित करते है,लेकिन दान देते समय कभी मन के अन्दर अहकार की प्रवृत्ति आ गयी, कि मैं बडा दानी हू, मेरे समान कौन दान दे सकता है ? मैं इतना उदार हू— अगर ये भावनाये प्रवेश कर गयी तो वह भले ही श्रावक की भूमिका मे हो, लेकिन वहा भी असस्कारित जीवन का प्रवेश हो गया। और उसका भी जीवन सस्कारित होने की दिशा मे आगे बढने से रुक गया।

शील की दृष्टि से भी शीलव्रत ग्रहण करता है कि वा ब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है, लेकिन उसमे भी वडी सावधानी रखने की आवश्यकता है। उसमे भी यदि अहकारी वृत्ति का प्रवेश हो गया तो हम विधि से भटक जायगे क्योकि शील व्रत अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है उसमे अह आना स्वाभाविक है। तलवार की धार पर चलना सहज है लेकिन वीतराग देव की वताई विधि के साथ शील की धार पर चलना कठिन है। इसीलिए कभी कभी आध्यात्मिक रस मे बहने वाले कवि कुछ कविताओ के प्रसग से अपने अन्तर नाद को व्यक्त कर देते है—

"धार तलवार नी सोहिली
दोहिली चौदवा जिन तणी चरण सेवा"

ये चौदहवे भगवान की प्रार्थना की कडिया है। चौदहवे भगवान की वात कहो, नौवे भगवान की वात कहो या चौवीस तीर्थंकरो की वात कहो, उनका एक ही स्वर है और एक ही विधि है। उनका मौलिक दृष्टि से मौलिक तत्वो का एक ही तरह का विश्लेपण है। यह दूसरी वात है कि साधक, युग को देखकर साधना के नियमो मे कुछ कमीवेशी या कुछ वढोतरी कर सकते है, लेकिन मौलिक तत्वो के विपय मे कोई अन्तर नही आता। ऐसे उन परमात्मा के विधि विधान के ऊपर चलना और शीलव्रत की धार पर चलना यह तलवार की धार से भी कठिन

है। तलवार की धार पर प्रत्येक मनुष्य नही चल सकता, लेकिन कदाचित् बाजीगर अपना प्रयत्न करके कुछ चल सकने की कोशिश करे, किन्तु उस तपश्चर्या की धार पर चलना उससे भी मुश्किल है। ठीक वैसे ही परमात्मा की विधि पर चलना, भगवान के मार्ग पर चलना और वह भी सयम के साथ, तलवार की धार से भी अधिक कठिन है। इस प्रकार की दुष्कर वृत्तियो मे सुविधि के साथ गमन करना तथा अपने मे अहकारी वृत्ति का प्रवेश नही होने देना ही साधक की साधना है, वही सस्कारित जीवन है।

तप केवल आत्मशुद्धि के लिए

शील का अर्थ स्वभाव से भी है। जहा स्वभाव का प्रसग आता है, उसे आजकल की भाषा मे हम नेचर किंवा प्रकृति कहते हैं अपना स्वभाव अन्य व्यक्तियो के लिये कैसा बने इस विषय मे आज इन्सान को अपने जीवन को मोड देने की आवश्यकता है। उसका स्वभाव सुन्दरतम बने, स्नेह मय बने, वह मधुर बने, वह रसयुक्त बने, सबके दिलो को खीचने वाला बने—ऐसा स्वभाव जिसका बनता है वह भी शील की स्थिति मे आता है। दानशील और तप—इन तीनो मे से दो का विवेचन आपके सामने आया। तप करने की दृष्टि से तपश्चर्या जहा चतुर्मास लगता है वहा पर चालू होती है, लेकिन इस विषय मे जयपुर का नाम अधिक श्रवण करने को मिलता है। इन वर्षो मे जयपुर के अन्दर शायद ही कोई चातुर्मास ऐसा बीता हो जिसमे मासखमण नहीं हुए हो जैसा कि अभी श्रवण करने को कुछ मिल रहा है, आज ही कोई मासखमण नही हो रहा है बल्कि मासखमण की तपश्चर्या कुछ वर्षों से सुन रहे है, कभी ज्यादा हो गयी कभी कम हो गयी यह अलग बात है। तो तप की स्थिति भी चलती। लूणावत जी की माताजी ने शायद शेष काल मे २६ दिन की तपश्चर्या कर ली। तो इस प्रकार तपश्चर्या

का काम भी चालू हो सकता है किन्तु उस तप के पीछे यदि किसी प्रकार की कामना चल पडे तो वह कामना विधि की नही होगी। प्रभु के वचन है—

नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो कित्ति-वण्ण-सद्द सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा

इह लोक के लिए तप न करे, परलोक के लिए भी तप न कर, यश-कीर्ति की कामना से भी तप न करे, किन्तु सिर्फ कर्म निर्जरा-आत्म शुद्धि के लिए तप करे।

मै कभी कभी सुनता हूँ — इधर का मुझे पता नही, लेकिन मारवाड के अन्दर बोलते है कि महाराज धमक तेला किया। मैंने एक दिन धमक तेले की व्याख्या पूछी कि धमक तेला क्या है ? तो वे कहने लगे कि जो बहिन तेला करती है वह घर वालो को धमकाती है कि इतना रुपया दो तो पारणा करूँ, अमुक जेवर बनवाओ तो पारणा करूँ। इस तरह से रुपया माँगने के लिए अगर धमक तेला करते है तो वह तेला भगवान की विधि के अन्दर नही है।

इसी प्रकार "मै यदि अधिक तप करूँ तो मुझे अधिक स्वर्गीय आनन्द मिलेगा" इस भावना से भी तप नही करे।

मेरी कीर्ति होगी, लोग मुझे धन्यवाद देगे, चारो तरफ से तारीफ होगी—इस भावना से भी तप की स्थिति का प्रसग उपस्थित नही करे अपने मन मे भी ऐसी भावना न करे। यदि तपस्वी की तारीफ अन्य लोग कर रहे है तो वे अपने जीवन मे सम्यग्दृष्टि जीवन के लक्षण का पालन कर रहे है वह तो उनका स्वभाव है तथा मौलिक दृष्टि से धन्यवाद देना उनके लिए आवश्यक है, लेकिन तप करने वाले को कोई कामना नही करनी चाहिए कि लोग मुझे धन्यवाद

दे और मेरी यशोगाथा चारो तरफ फैले। इस भावना से तप नही करे। तो किसके लिए करे? प्रभु का शब्द है कि नन्नत्थ निज्जर ट्ठयाए" एकान्त निर्जरा के लिए तप किया जाये। इसका मतलब यह है कि जो अनादिकाल से आत्मा के साथ कर्म बन्धन है, उनको हटाने के लिए, तप करे। बद्ध कर्म-दलिको को देश मे हटाना निर्जरा है। तो उस निर्जरा के लिए दूसरा शब्द मैं कहू--"आत्म शुद्धि के लिए" अगर आपके व्यवहार के लिए समझे तो जीवन की शुद्धि के लिए जीवन को सस्कारित करने के लिए तप की स्थिति रहे। इस प्रकार जीवन के लक्ष्य के मोड को लेकर इस चातुर्मास के अन्दर अपने जीवन का हमे अवलोकन करना है और इस जीवन को समझना है कि हम किस ओर जा रहे हैं। हमारे जीवन मे पवित्र सस्कार आये या नही? क्या हम अभी तक उस अनादिकाल के सस्कारो के साथ वह रहे है। क्या हमारे जीवन मे असस्कार ही चल रहे है, या कुछ सुन्दर सस्कार पनप रहे हैं—इसका निरन्तर ध्यान रखना, चिन्तन करना, यह चातुर्मास का सुन्दरतम उपयोग है।

चातुर्मास में कर्तव्य

चातुर्मास मे क्या करना चाहिए, और क्या नहीं इसका कुछ सकेत आपको सन्त दे रहे थे और शायद उस सकेत में रात्रि भोजन नहीं करने का सकेत भी मिला होगा। या नहीं मिला? मिला। जो अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहते हैं, सुन्दरतम और सस्कारित करना चाहते हैं वे तो रात्रि भोजन की वृत्ति को अपने जीवन में रख ही नहीं सकते। यदि रात्रि भोजन चलता है तो समझना चाहिए कि अभी हम प्रभु की सुविधि के अन्तर पेटे मे नहीं आये। एक दृष्टि से देखा जाये तो जैनियो के बच्चे बच्चे को रात्रि भोजन नही करना चाहिए। क्योंकि आप भी रात्रि भोजन करेंगे तो फिर जो असस्का

जीवन वाले व्यक्ति है उनमे और आपमें क्या अन्तर रह जायेगा ? रात मे कितने जन्तु, कितने प्राणी और फिर बिजली के प्रकाश के कारण कितने पतगे इकट्ठे होते है किस तरह खाने मे आते है। मैं समझता हूँ कि रात्रि भोजन करने वाले भाई भोजन की तरफ शायद ही ख्याल रखते है। हाँ 'प्राय ध्यान तो इधर उधर देखने मे रहता है और भोजन के साथ न मालूम कितने चलते फिरते जीवो को पेट मे डाल देते है, और उनका क्या परिणाम होता है, उससे असस्कारित जीवन का कुछ प्रदर्शन तो होता ही है लेकिन साथ ही साथ उसका वर्तमान जीवन भी खतरे मे पड सकता है। आज जितनी बीमारियाँ हो रही है और डाक्टरो को तरह तरह के इलाज करने की दृष्टि से सोचना पड रहा है इसके अनेक कारण हो सकते है लेकिन एक कारण यह भी है कि रात्रि भोजन के समय जहरीले जन्तुओ का पेट मे प्रवेश होने की सभावना रहती है और उससे अनेक रोगो की उत्पत्ति की भी सभावना रहती है। यदि वर्तमान जीवन को सुन्दरतम रखना चाहते है तो रात्रि भोजन के लिए बहुत ज्यादा ध्यान रखने की आवश्यकता है। जहाँ 'तक पूरे समाज का प्रश्न है उसकी दृष्टि से दिगम्बर समाज के भाइयो के अन्दर यह सस्कार ज्यादा सुनने मे आते है। उनमे रात्रि भोजन का प्रसग प्रायः नही पाया जाता है। वहा उन्हे इस विषय के प्रारम्भ से ही सस्कार 'दिये जाते है।

छोटे बच्चे भी इसका खयाल रखते है। जब कि मैं छोटा था, स्कूल मे पढ रहा था, उस समय एक पाटनी गोत्र का विद्यार्थी मेरे साथ पढता था। शुरु मे सूर्यास्त होने के भय से वह स्कूल से जल्दी छुट्टी लेकर भाग कर घर जाने लगा तब मैंने उससे पूछा कि इतनी जल्दी छुट्टी लेकर घर क्यो जा रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि भोजन करने के लिये जा रहा हू। फिर मैंने पूछा, अभी क्यो जा रहे हो, अभी तो स्कूल का समय है। उसने उत्तर दिया—दिन

थोडा है, सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेना है। मैं जैनी हू न।

देखिये—एक तो वह जैनी था और एक मैं जैनकुल मे जन्म लेने वाला था, अजैनी जैसा था, क्योकि उन गांवो मे इस तरह के सस्कारो की प्राप्ति थी नही। क्या कर्तव्य है जैनियो का इसकी भी जानकारी नही थी। मैंने उसे पूछा—रात मे भोजन क्यो नही करते ? उसने उत्तर दिया "मेरी मा ने कहा है कि रात्रि भोजन करूंगा तो मेरे सीगडे उग जावेंगे।"

बच्चे को मां ने इसी तरह से समझा रखा था। छोटे बच्चे भी इतना ध्यान रखते है इस समाज मे, सूर्यास्त से पहले ही भोजन करने के लिए दौड कर जाते हैं, और एक आप हैं इतने वृद्ध और नौजवान होकर भी इसका विचार इने-गिने ही रखते होगे !

आप मनुष्य की बात छोडिये। जो अनजान हैं, जिनको हम अपने से कही बहुत कम ज्ञानवाला मानते है, उन पक्षियो को ही लीजिये। चिडिया है, कबूतर है ये रात मे चुग्गा नही चुगते।

तो यह रात्रि भोजन नही करने का प्रसग आप लोगो के सामने उपस्थित कर रहा हू जो और किसी छोटे मोटे ठिकाने मे नही रहते, गावो मे नही रहते, बल्कि राजस्थान की राजधानी मे रहते हैं, जयपुर जैसे नगर मे रहते है। जहाँ मेरा जन्म हुआ वहाँ के गावो के लोग भले ही न समझें, पर राजधानी के नागरिक तो समझते हैं और उसमे भी जयपुर के जौहरी घरानो के जैनी, जवाहरात का परीक्षण करने वाले। फिर क्या आपने जीवन का परीक्षण नही किया ? यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

तो मैं यह सोच रहा हू कि राजधानी के भाई और बहन बडे समझदार और तेजस्वी हैं। धर्म ध्यान और चिन्तन मनन मे काफी रुचि रखने वाले हैं। यहा का युवावर्ग भी बहुत जागृत और लगनशील है। इन सब बातो को देखते हुए इस प्रसग पर क्या मैं यह मान कर चलू कि कम से कम आप सब भाई बहन ८ ५५।

के तौर पर ही सही, १२ महीने के लिये रात्रि भोजन नही करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करने को तत्पर होंगे ? अगर आप ऐसा कर लेते है तो चातुर्मास काल मे बीच-बीच मे आवश्यकता हो तो मुझे यह कहने का भी बडा अच्छा अवसर मिल जावेगा कि जयपुर के भाई बहुत जागृत है उन्होने एक वर्ष के लिये ही सही, रात्रि भोजन न करने की प्रतिज्ञा कर ली है। फिर भी कदाचित किसी को कुछ कमजोरी अनुभव हो रही हो तो, कम से कम आज चातुर्मास के प्रारम्भ का दिवस है, आज से लेकर चातुर्मास समाप्ति काल तक के लिये तो रात्रि भोजन नही करना, ऐसी प्रतिज्ञा आप करेंगे, क्या ऐसा विश्वास रक्खू ?

तो मैं दानशील तप और भावना की बात कह रहा था। चार महीनो मे आप ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें, रात्रि भोजन का त्याग करें, किसी भी प्राणी को दुख: न दें, कालाबाजारी न करें। झूठ न बोलें, किसी प्रकार की चोरी न करे और इन चार महीनों मे कुछ परिग्रह ममत्व को भी कम करे। इस तरह से अगर कुल मिलाकर १८ ही पापो के त्याग की भी भावना जगेगी तो इस चातुर्मास का रूप कुछ और ही बन जावेगा। यह सकेत चतुर्विध सघ के अग के रूप मे आपको मिल रहा है। यह सकेत केवल मेरा ही नहीं है, भगवान महावीर का है। भगवान् ने स्पष्ट सकेत दिया है :—

असंखयं जीविय मा पमायए।

मै भी निरन्तर वही बात कहता आ रहा हूं, बार-बार दोहराता जा रहा हूं कि तुम्हारा जीवन, असस्कृत है, इस असस्कृत जीवन मे प्रमाद मत करो। इस स्थिति को हटाने के लिये यह सकेत दिया जा रहा है, इस स्थिति को आप स्वय अपनी बुद्धिमत्ता से चिन्तन करके, इन सस्कारो को परिमार्जित करेंगे तो जीवन की स्थिति को समझने का अभ्यास कर पावेंगे।

सम्यग् निर्णायक जीवन है

यदि आप अपने जीवन की अन्तरतम परिभाषा को समझने का प्रयास करे और परिभाषा के साथ जीवन को मांजने की कोशिश करे, तो कृतकृत्य हो सकते हैं। मैं जीवन की परिभाषा की दृष्टि से कथन कर रहा हू। इस जीवन को समझने के लिये एक और परिभाषा के द्वारा इसे स्पष्ट कर दू

सम्यग् निर्णायक समतामय च यत् तज् जीवनम्

जो सम्यग् निर्णायक, अर्थात् सम्यग् प्रकार से निर्णय करने वाला है, और समतामय है, वह जीवन है। यह तो हुई शब्दार्थ की स्थिति। अब इसकी व्याख्या करे तो प्रश्न होता है, सम्यग् निर्णायक का क्या तात्पर्य ? और सम्यग् निर्णय किसका किया जावे ? इस शब्दार्थ को भी सस्कारित जीवन के साथ समझना है। निर्णय किये बिना उस वस्तु का स्वरूप सामने नही आता।

जब निर्णय का अभाव रहता है तो मनुष्य पथभ्रान्त बन जाता है और अज्ञानवश क्या क्या कर गुजरता है, और करते करते उसकी स्थिति कहा तक पहुच जाती है, उसका एक रूपक पहले मैं रख गया था और उसमे बताया गया था कि जहा उस सेठानी ने अपनी पुत्र वधू को एक साधु को दान देते हुए देखा और दान देते हुए देखने के साथ ही साथ जब उस पुत्रवधू के मुँह से साधु को सकेत मिला और साधु को उसने यह कहा कि तुम्हारा एक चला गया तो उत्तर मे उस साधु ने कहा कि तुम्हारे दो गये। पुन बहन ने कहा तुम्हारे तीन गये।

इस बात को लेकर सेठानी के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। अपनी पुत्रवधू के प्रति अविश्वास करके वह उसको मृत्यु तक के मुँह मे पहुँचाने का प्रयास कर रही है।

उसने बिना निर्णय किये ही अपने पुत्र को बुलवा लिया और

उसके सामने भी यह घटना रक्खी। पुत्र भी असमजस में पड गया। वह सोचने लगा कि मेरी माता क्या कह रही है? जिसको मैंने इतने दिनो से समझा हैं, जिसके जीवन को मैंने परखा है। आज वह मेरी धर्मपत्नी क्या इस प्रकार बुरे आचरण वाली बन सकती है? यह मेरी समझ मे नही आता। लेकिन उधर मा जिस पर मैं श्रद्धा रखता हू तो क्या वह झूठ वोल सकती है? मैंने इस माता की कुक्षी से जन्म लिया है, इसी माता की गोदी मे पला, पोसा और बडा हुआ हू। माता ने मुझे हर तरह की अच्छी शिक्षा दी और आज तक मैं माता का बडा आदर करता आया हू। आज क्या वह माता मुझे धोखा दे सकती है? या झूठी बात कह सकती है? यह भी बात मेरी समझ मे नही आती। वह कि कर्त्तव्य विमूढ़ सा हो गया। कुछ सोच नही पा रहा था। कुछ क्षण मौन खड़ा रहा।

तव माता ने अपने पतिदेव को सम्वोधित किया कि सेठजी! अपने पुत्र का मुँह खुलवाइये। यह मौन क्यो खडा है?

सेठ ने पुत्र को सम्वोधन किया : गोविन्द, क्या वात है?

किस उलझन मे उलझ गया है? तुम्हारी माता ने जो निर्णय लिया है वह निर्णय ठीक है अत तू उसके अनुसार काम करने को तत्पर है कि नही?

पुत्र कहने लगा—पिताश्री, मैंने आज दिन तक आपकी आज्ञा शिरोधार्य की है लेकिन आज मेरे मन मे न मालूम किस प्रकार की उलझन पैदा हो गई है? उसको सुलझा नही पा रहा हू। किसी निर्णय और निश्चय पर नही पहुँच पा रहा हूँ, और विना निर्णय के मैं कैसे क्या करू? आप आज्ञा दे रहे हैं और इसके अन्दर सहमति प्रकट करू यह भी मेरे गले नही उतर रही है, मेरा दिल नही मान रहा है और मैं इन्कार करू कि आपकी पुत्रवधू ऐसा नही कर सकती तो भी मेरा दिल नहीं मानता? अब कैसे करू? और क्या करू? आप ही वताइये।

तब फिर सेठ ने कहा—कि देखो भाई मैंने अपनी नजर के अनुसार सोच समझ कर तुम्हारा विवाह किया। इस कन्या को मैंने सुलक्षणा और देवी के रूप मे देखा, सुशील समझा, पवित्र आचार वाली समझा, तब तो तुम्हारी माता से विरोध मोल लेकर भी और पैसे का लालच भी छोड़कर तुम्हारे साथ इसका विवाह किया। और मुझे आज दिन से पहले तक किसी भी प्रकार का विचार नही था, लेकिन जब कि तुम्हारी माता कह रही है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा और प्रत्यक्ष कान से सुना, कि इसने साधु को पहले तो माल बहराया और साथ ही साथ ऐसे सांकेतिक शब्दो मे वार्तालाप कर रही थी इस वार्तालाप की स्थिति को जब सुना तो मेरा मन भी साक्षी देने लगा। कि हो सकता है यह स्त्री कुछ इस तरह की हो अन्दर से कुछ और हो और ऊपर से कुछ और दिखती हो। इसलिये जो तुम्हारी माता कह रही है उसे करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

बन्धुओ, बहिनो पर लान्छन लगाना सहज है लेकिन बहनों के गुणो को लेकर जीवन को विकास करना दुश्वार है। इस बहन के ऊपर जो कुछ लाछन की स्थिति बन रही है। यह सिर्फ भ्रान्ति के कारण बन रही है। इस बहन के जीवन मे कुछ भी मलिनता के भाव नही है फिर भी सासूजी का मस्तिष्क दान देने से भटक गया उन्होने इन्कारी कर रखी थी कि तू किसी को दान मत देना। पर वह अपने जीवन के सस्कारो के कारण, दानशील तप और भावना के महत्व को समझती थी इसलिये उसने साधु को सात्विक दान दे दिया। इसके कारण उसकी सासूजी गरम हो गई और उस गरमी से तनतना कर वहू और साधूजी के बीच हुए साकेतिक शब्दो को वह पकड लेती है। इसके मन मे विचार गहराई से घर कर लेते है कि इसने साधु के साथ गुप्त बात की इस गुप्त बात मे क्या अर्थ छिपा है?

सभी का कर्तव्य तो यह था कि इसका निर्णय करते। सासूजी खुले रूप से तत्काल बहू से पूछती कि तुम बताओ साधु के साथ तुमने साकेतिक शब्दो मे क्या बात की ? क्या एक गया और क्या दो गया और क्या तीन गया ?। इसका खुलासा करो। अगर सासू यह खुलासा उसी समय माग लेती तो इस तरह का उपद्रव नही होता। पर उस सासूजी की बुद्धि गुस्से मे और दूसरी स्थिति मे परिणत हो जाने से निर्णय न कर पाई। उसका जीवन असस्कारित था। जिसके मस्तिष्क मे कुछ सस्कार आते है। किसी की कभी बात हो तो खुले दिल से पूछ लेते है, निर्णय कर लेते है। कोई वात किसी भी रूप मे हो, किसो भी व्यक्ति ने किसी भी रूप मे कही हो, चाहे पक्ष मे कही हो या विपक्ष मे चाहे इस विषय मे अमुक के मार्फत वात आई हो, पर निर्णायक बुद्धि रखने वाले प्रामाणिक व्यक्ति का काम होता है कि वह उसका खुलासा सम्बन्धित व्यक्ति से सीधे पूछ कर ले। अमुक व्यक्ति जिसकी मार्फत वात आई हो वह कितना ही प्रामाणिक हो उसकी बात पर भी ध्यान न देकर सीधे उसी यक्ति से स्पष्टीकरण कर लेते है कि क्या आपने अमुक वात मेरे वारे मे कही है ?

जिससे पूछा जाय उसका भी कर्तव्य होता है कि वह भी बिल्कुल नि सकोच भाव से स्पष्ट कहे, नग्न सत्य के रूप मे कहे तो दोनो सस्कारित कहे जा सकते है लेकिन ऐसा नही होता है और असंस्कार के वशीभूत होकर और विद्वेष करने वालो के साथ ऐसी भावना पैदा कर लेते है जिससे रात दिन कर्मबधन होता रहे—यह मेरा विरोधी है, यह मेरे प्रति ऐसी भावना रखता है, चाहे रखे या नही रखे जिसके ऊपर शका हो जाती है, वह किसी से बात कर रहा हो तो भी यही शका रहती है कि यह मेरे ही विषय मे बात कर रहा है। इस प्रकार इन वातो मे पडकर अपने जीवन को असस्कार से असस्कारित तम दशा मे ले जाता है लेकिन जीवन का परिमार्जन नही कर पाता

है तो वन्धुओ इसकी प्रत्येक व्यक्तियो को सावधानी रखनी चाहिए, यह प्रत्येक व्यक्ति का प्रसग है, प्रत्येक समाज का प्रसग है, राष्ट्र का प्रसग है। आजकल कई व्यक्तियो को इसी मे मजा आता है कि किस को कितना भिडा सकते है, कितना लडाई झगडा करा सकते हैं। जिनके जीवन मे सस्कार होते हैं वे निर्भयता के साथ उसकी जाच करते है और जाच करके उसका निर्णय निकालते है। नही तो कभी भी लापसी का जहर वन जाता है। एक सेठ जी ने वैद्यराज की दवा ले रखी थी और उस शहर मे प्राचीन प्रथा की दृष्टि से एक वडा जीमनवार का प्रोगाम था। जीमनवार करन वाले व्यक्ति क परिवार ने पचों को वुलाया और उनकी सलाह से सव कुछ तय किया। मन मे सोलह सेर घी डलवाया। उस सेठ ने भी खुली तरह से परिवार के सारे सदस्यो को न्योता दिया जिसे सिगरी न्योता कहते हैं। तो वे सेठ साहव जिन्होने वैद्यराज की दवा ले रखो थी उनका भी मन ठिकाने नही रहा और साचा कि ऐसी लापसो खान को कव मिलेगी ? इसलिए हमे भी आज लापसी जीमने के लिए जाना है। जाना तो है लेकिन वैद्यराज की राय इस वारे मे ले लेनी चाहिए। इस भावना से कपडो से सजकर वैद्यराज जी से पूछने के के लिए दरवाजे मे खडे हो गये सयोग से उसी रास्ते से वैद्यराज जी शीघ्रगति से जा रहे थे। सेठ साहव ने वैद्यराज को देखकर उनको कहा कि ठहरो, ठहरो आज गाँव मे जीमनवार हैं। और गुडकी लापसी है। मैं जाऊँ या नही। वैद्यराज जी वडे जरूरी कार्य से जा रहे थे इसलिए उन्होने जाते जाते कहा कि लापसी तो जहर है। सेठ साहव ने सोचा कि लापसी जहर है और जहर की लापसी खाने से तो मनुष्य मर जाता है, तो लापसी जव मेरे लिए जहर है तो मेरे परिवार वाले खायेंगे तो उनके लिए भी जहर ही होगी। सेठ साहब पीछे लौट कर घर मे आये और अपने परिवार के सदस्यो से कहा कि लापसी तो जहर है अत. जीमने मत जाओ। तव

सभी का कर्तव्य तो यह था कि इसका निर्णय करते। सासूजी खुले रूप से तत्काल बहू से पूछती कि तुम बताओ साधु के साथ तुमने सांकेतिक शब्दो मे क्या बात की ? क्या एक गया और क्या दो गया और क्या तीन गया ?। इसका खुलासा करो। अगर सासू यह खुलासा उसी समय माग लेती तो इस तरह का उपद्रव नही होता। पर उस सासूजी की बुद्धि गुस्से मे और दूसरी स्थिति मे परिणत हो जाने से निर्णय न कर पाई। उसका जीवन असस्कारित था। जिसके मस्तिष्क मे कुछ सस्कार आते है। किसी की कभी बात हो तो खुले दिल से पूछ लेते है, निर्णय कर लेते हैं। कोई बात किसी भी रूप मे हो, किसी भी व्यक्ति ने किसी भी रूप मे कही हो, चाहे पक्ष मे कही हो या विपक्ष मे चाहे इस विषय मे अमुक के मार्फत बात आई हो, पर निर्णायक बुद्धि रखने वाले प्रामाणिक व्यक्ति का काम होता है कि वह उसका खुलासा सम्बन्धित व्यक्ति से सीधे पूछ कर ले। अमुक व्यक्ति जिसकी मार्फत बात आई हो वह कितना ही प्रामाणिक हो उसकी बात पर भी ध्यान न देकर सीधे उसी यक्ति से स्पष्टीकरण कर लेते है कि क्या आपने अमुक बात मेरे बारे मे कही है ?

जिससे पूछा जाय उसका भी कर्तव्य होता है कि वह भी बिल्कुल नि:सकोच भाव से स्पष्ट कहे, नग्न सत्य के रूप मे कहे तो दोनो सस्कारित कहे जा सकते है लेकिन ऐसा नही होता है और असस्कार के वशीभूत होकर और विद्वेष करने वालो के साथ ऐसी भावना पैदा कर लेते है जिससे रात दिन कर्मबधन होता रहे—यह मेरा विरोधी है, यह मेरे प्रति ऐसी भावना रखता है, चाहे रखे या नही रखे जिसके ऊपर शका हो जाती है, वह किसी से बात कर रहा हो तो भी यही शका रहती है कि यह मेरे ही विषय मे बात कर रहा है। इस प्रकार इन बातो मे पडकर अपने जीवन को असस्कार से असस्कार-तम दशा मे ले जाता है लेकिन जीवन का परिमार्जन नही कर पाता

भाई ! देखिये हमने पचायत करके आपको जीमनवार करने की दृष्टि से सब कुछ तैयारी करने के लिए कहा और तुमने वैसी तैयारी भी की लेकिन बात यह है कि हमने लापसी मे जहर डालने के लिए नही कहा और आपने लापसी मे जहर डाला है। वह व्यक्ति अवाक् रह गया और कहने लगा कि आप क्या कह रहे है, मै स्वप्न मे भी नही जानता कि लापसी मे जहर डाला है। उसमे कतई जहर नही है और जैसा आप पचो ने कहा वैसा ही सामान डाला है उसके अतिरिक्त कुछ भी नही है। तो इस पर सबकी जुबान खुल गयी और कहा कि अच्छा तुमने जहर नही डलवाया तो ऐसा करो कि आप पहले जीमो ! और तुमको घण्टे दो घण्टे तक कुछ नही होगा तो हम सारे गाव वाले जीम लेंगे। वह जीमनवार करने वाला व्यक्ति सोचने लगा कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कौन जाने बाबा नौकर चाकरो ने जहर डाल दिया होगा या किसी दुश्मन ने डाल दिया होगा। यदि पहले पहल मै जीम लूँगा तो मर जाऊँगा। उसने कहा कि मै तो पहले नही जीमूँगा। तो पचो ने देखा यह बात और भी मजबूत हो गयी कि लापसी मे जहर है तभी तो यह नही जीमता। उसने कहा कि देखो साहब मैं सच्ची बात बतला देता हू कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कदाचित् कोई दुश्मन आ गया हो या रसोइये के मन मे खराबी आ गयी हो और उन्होने जहर डाल दिया हो तो उनको पूछने से पता लग जायेगा। फिर उस जीमनवार करने वाले व्यक्ति ने उन रसोइयो से पूछा कि इस लापसी मे जहर है ? तो उन्होने कहा कि नही। हम सौगन्द खाकर कहते है कि इसमे जहर नही है। तो पचो नें कहा कि यदि ऐसी बात है तो पहले तुम जीम लो और घण्टे दो घण्टे तुम्हे कुछ नही हुआ और तुम जिन्दे रहोगे तो हम जीम लेंगे। इतनी बात सुनकर रसोइये सोचने लगे कि कौन जाने क्या हुआ हो, कही हम इधर उधर रह गये हो और किसी ने दुश्मनी से जहर डाल दिया हो, हम खा लेंगे तो मर जायेंगे इसलिए पहले

परिवार के सदस्यो ने कहा कि पिताजो जब आप हमको लापसी जीमने के लिए रोक रहे है तो इस गाव के अन्दर हमारे अन्य सबधी भी बहुत है, वे चले जायेगे तो मर जायेगे इसलिए आपकी आज्ञा हो तो उनको भी बता आये। तो सेठ ने अनुमति दे दी। बाल-बच्चे भागे और कहा कि लापसी जहर है इसलिए जीमने मत जाना। वे परिवार वाले रुके उन्होने सोचा कि हमारे और भी तो परिवार है, तो उन्होने अन्यो को सूचित किया। इस तरह से सारे शहर मे सन्नाटा छा गया और जो सबके सब तैयार हुए वे सबके सब रुक गये। बेचारे जिस व्यक्ति ने सारा माल बनवाया वह व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यो को लेकर द्वार-द्वार घूमता है और लोगो से कहता है पधारिये,पधारिये तो कोई कुछ नही कहता सिर्फ हा साहब, हा साहब कह देते है और इसके अलावा कुछ नही कहते और जाता भी कोई नही। इस प्रकार वे परिवार के सदस्य हैरान हो गए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। पचायत बुलाई और कहा कि देखिए साहब आपके कहने से सब तैयारी की, सब कुछ माल तैयार हो गया परन्तु कोई नही आ रहा है और कोई उत्तर भी नही दे रहा है सब कह रहे है हा साहब, हा साहब—इसका निर्णय तो कीजिये कि जीमने के लिए क्यो नही आ रहे है ? तो पच भी एकत्रित हो गये लेकिन किसी भी पच मे पूरा निर्णय करने की शक्ति नही। पच भी कई तरह के होते है। आजकल तो पचायते प्राय. समाप्त हो गयी है। गावो मे कही-कही बाकी रही हैं। आचार्य श्री कहते थे कि निर्णय करने वाले पच भी कई तरह के होते है। जो सभी सही निर्णायक नही होते। जो एक तरफा निर्णय करते है। तो वे सभी एकत्रित पच सोचे जा रहे हैं निर्णय कोई नही कर पा रहा है, बेचारा वह माल बनाने वाला हैरान हो रहा है। किसी ने कोई निर्णय नही दिया और सारे इधर-उधर देख रहे थे। उनमे से एक निर्णायक व्यक्ति निकला और उसने सच्चाई के साथ कहा कि

भाई ! देखिये हमने पचायत करके आपको जीमनवार करने की दृष्टि से सब कुछ तैयारी करने के लिए कहा और तुमने वैसी तैयारी भी की लेकिन वात यह है कि हमने लापसी मे जहर डालने के लिए नही कहा और आपने लापसी मे जहर डाला है। वह व्यक्ति आवाक् रह गया और कहने लगा कि आप क्या कह रहे है, मै स्वप्न मे भी नही जानता कि लापसी मे जहर डाला है। उसमे कतई जहर नही है और जैसा आप पचो ने कहा वैसा ही सामान डाला है उसके अतिरिक्त कुछ भी नही है। तो इस पर सवकी जुवान खुल गयी और कहा कि अच्छा तुमने जहर नही डलवाया तो ऐसा करो कि आप पहले जीमो ! और तुमको घण्टे दो घण्टे तक कुछ नही होगा तो हम सारे गाव वाले जीम लेंगे। वह जीमनवार करने वाला व्यक्ति सोचने लगा कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कौन जाने बाबा नौकर चाकरो ने जहर डाल दिया होगा या किसी दुश्मन ने डाल दिया होगा। यदि पहले पहल मै जीम लूँगा तो मर जाऊँगा। उसने कहा कि मै तो पहले नही जीमूँगा। तो पचो ने देखा यह वात और भी मजवूत हो गयी कि लापसी मे जहर है तभी तो यह नही जीमता। उसने कहा कि देखो साहव मैं सच्ची वात बतला देता हू कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कदाचित् कोई दुश्मन आ गया हो या रसोइये के मन मे खरावी आ गयी हो और उन्होने जहर डाल दिया हो तो उनको पूछने से पता लग जायेगा। फिर उस जीमनवार करने वाले व्यक्ति ने उन रसोइयो से पूछा कि इस लापसी मे जहर है ? तो उन्होने कहा कि नही। हम सौगन्द खाकर कहते है कि इसमे जहर नही है। तो पचो ने कहा कि यदि ऐसी वात है तो पहले तुम जीम लो और घण्टे दो घण्टे तुम्हे कुछ नही हुआ और तुम जिन्दे रहोगे तो हम जीम लेंगे। इतनी वात सुनकर रसोइये सोचने लगे कि कौन जाने क्या हुआ हो, कही हम इधर उधर रह गये हो और किसी ने दुश्मनी से जहर डाल दिया हो, हम खा लेगे तो मर जायेंगे इसलिए पहले

हम तो नही जीमते। पचो ने कहा कि बात तो बिगडी लेकिन यह मालूम करना चाहिए कि यह बात कहा से उठी। तो फिर इसकी खोज करने के लिए सोचा और एक दूसरे से पूछताछ करने लगे तो सगे सम्बन्धियो से पता लगाते लगाते वहा तक पहुँचे कि सेठजी ने कहा था कि लापसी मे जहर है। सेठ ने कहा कि देखिये मै गलत नही कहता और मुझे तो वैद्यराज जी कहा। मैने उनसे पूछा कि मै लापसी खा लूँ तो उन्होने कहा कि लापसी मे तो जहर है। वहा पर वैद्यराज जी को बुलाया गया और पचो ने सोचा कि यदि जहर की पुडिया जायेगी तो वैद्यराज जी के यहा से ही जायेगी, उन्हे बुलाकर पूछे कि आपके यहा से कितने जहर की पुडिया गयी। वैद्यराज जी ने कहा कि मेरे यहा से तो एक भी जहर की पुडियाँ नही गई। उनसे कहा गया कि फिर आपने कैसे कहा कि लापसी मे जहर है। वैद्यराज ने कहा सेठजी को तो मैने दवा दे रखी थी और उसके लिए पथ्य बता रखा था कि तेल और गुड नही खाना। इसलिए यह लापसी सेठजी के लिए जहर है, लेकिन गाव वालो के लिए जहर थोडे ही है। पचो ने कहा कि जब आपके यहा से पुडिया नही गयी और आपने पथ्य की दृष्टि से बताया तो फिर आप ही इस लापसी को पहले जीम लो। वैद्यराज जी निर्भय थे और निश्चित थे, वे आगे चले और जाकर अच्छी तरह से लापसी खा ली और बैठ गये, दो तीन घन्टे कुछ नही हुआ तो सारे गाव वाले बिना बुलाये जीम गये।

वन्धुओ, देखिये किसी भी चीज का निर्णय किये विना किसी वात मे पड जाये तो लापसी मे जहर के समान हो जाता है और इस प्रकार अनेक वन्धु कर्मवन्ध करके अपने जीवन को न जाने कैसे असस्कारित वना लेते है। जीवन को सस्कारित करने के लिये चातुर्मास का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन चार महीनो मे वस्तु स्थिति का निर्णय करें। निर्णय अनेको चीजो का होता है। सव चीजो का निर्णय सम्यग् दृष्टि से कर लेते है तो वहाँ वास्तविक विकास का प्रसग ही आ जावेगा।

आप अपने मनो मे यह दृढ प्रतिज्ञा करे कि हमे किसी बात का निर्णय करने मे पूरी तरह से तत्पर रहना है और निर्णय भी उसी व्यक्ति से मिलकर करेंगे जिससे सीधा सम्बन्ध है। वह निर्णय नग्न सत्य के रूप मे होगा और उसी से जीवन सस्कारित हो जाएगा।

घडी सवा दस बजा रही है। चौदस की स्थिति अवश्य है। पर चौदस होने पर भी अधिक देर तक सुनाने पर थोडा ब्रेक लगा हुआ है। इस स्थिति से इस विषय को गौण कर रहा हू। इधर मेरे सामने और भी प्रश्न आ रहे हैं कि स्थायी कथा भाग भी व्याख्यान मे रखा जावे, जिससे साधारण जन मानस भी कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके और यह ठीक भी है। भगवान महावीर ने जीवन की पुष्टि के लिये चार तरह के अनुयोग फरमाये हैं। पहला है द्रव्यानुयोग जिसमे द्रव्य सम्बन्धी पदार्थो का विषद् विवरण है। दूसरा है, गणितानुयोग जिसमे गणित सम्बन्धी विवरण है, तीसरा है, चरण करणानुयोग, जिसमे आचार सम्बन्धी बातो का वर्णन है, और चौथा है, धर्म कथानुयोग।

तो धर्म कथानुयोग भी शास्त्रो का एक अग माना गया है। इसका कथन करते हुए प्रभु ने फरमाया कि जो साधक गहन साहित्य को नही समझ सकते उनको कथाभाग के प्रसग से साधना के उन गहन सूत्रो को समझाया जा सकता है। चरित्र चित्रण के के रूप मे उनको तत्व का बोध हो जाता है। रग की डिबिया मे क्या क्या चीजें रखी हुई है ? बच्चो को यह तात्विक दृष्टि से बताने जावें कि हाथी, घोडा, रथ आदि सभी इस रग की डिबिया मे है पर बच्चे समझ नही पाते। जब उसी रग को दीवार पर हाथी, घोडा के रूप मे चित्रित करके बता दिया जाता है तो जल्दी समझ जाते है।

इसलिये वीतराग देव ने चार अनुयोग बताये है। इन सबके साथ वीतराग वाणी का सम्बन्ध जुडा हुआ है। जीवन के निर्माण करने में जितना योग अन्य अनुयोगो का है कथानुयोग का भी

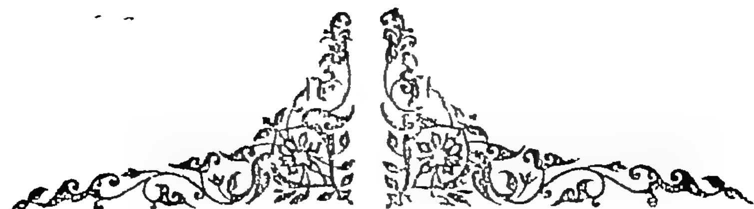
उतना ही योगदान है। इससे सरलता से समझकर हर भाई बहन अपने जीवन की तुलना उन चरित्तनायको से कर सकता है। इसी प्रसग से सोच रहा हू कि महाभारत के बीच का प्रसग कथा रूप मे कहता चलूँ। इसमे कमलसेन नामक एक तरुण का जीवन है। उसमे उस तरुण ने कैसी निष्ठा रखी है उसने अपना-जीवन कैसा बनाया, और जीवन के प्रश्न को किस तरह से हल किया, इसका दिग्दर्शन होगा। इसमे कुछ माताओ का भी प्रसग आता है जो सती रूप मे प्रख्यापित हुई हैं। समय का अवकाश नही है पर उसकी एक कड़ी उच्चारण के रूप मे रख ही देता हू क्योकि वह आन्तरिक जीवन को परिमार्जन करने वाली है।

निज गुण सुखकामी, ध्याता है आत्म राम को।

कहा है निज गुण सुखकामी, जो अपने सुख की कामना रखता है अर्थात् अपने जीवन को समझने की भावना रखता है। उसे विकसित रूप मे देखना चाहता है और जीवन की कलुषताओ का उन्मूलन करके जीवन के वास्तविक रूप को निखारना चाहता है। वह आत्माराम मे रमण करता है। आत्माराम के ध्येय के बिना जीवन निर्णायक समतामय नही बन सकता है। इसलिये इस मगला-चरण की कडी के साथ भी थोडा सम्बध जोडे।

तीन व्यक्ति माता-पिता और पुत्र तीनो अपने विचारो मे मस्त हो रहे हैं और बहन को खतम करने का विचार कर रहे हैं। वह भी कन्या गरीब घराने से निकल कर करोडपति के घर पहुची है। पर उसकी वह तमन्ना नही है कि सत्ता और सम्पत्ति मे डूबी रहे। वह तो यह समझती है कि यह सत्ता और सम्पत्ति और साहिबी मेरे जीवन के लिए महत्वपूर्ण नही है मेरे जीवन के लिये महत्वपूर्ण है तो जीवन का स्वरूप है। मै अपने उस सही स्वरूप को कैसे प्राप्त करूँ और कैसे समझूँ इस चिन्तन को लेकर वह अपने हाल मे मस्त है।

इन चार प्राणियो के बीच मे क्या प्रसग बनता है, और



सौम्य-रश्मि शशि से परम शीतल

नवनीत से कोमल

चारित्र-चूडामणि

महामहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

के

चरण कमलों में

शत-शत अभिवंदन ।

केसरीचंद माणकचंद सेठिया

बापूजी का कटरा, बीकानेर



परम श्रद्धेय, प्रात स्मरणीय

आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा.

के

ज्ञान–भक्ति एवं वैराग्य रस से ओत-प्रोत

'पावस–प्रवचन'

हम सबके जीवन मे नया प्रकाश देने वाले हो।



दीपचन्द उत्तमचन्द

(कपड़े के व्यापारी)

गगाशहर (बीकानेर)



पति क्या निर्णय लेता है और उस बहन पर क्या बीतती है। यह कल के लिये रख देता हू। इच्छा तो थी कि पूरा कर दूँ, पर समय अधिक आ जाने से इसे आगे के लिये छोड देता हू। फिर प्रसग आवेगा तो सुनाऊँगा।

आपको अन्त मे इतना ही सम्बोधन करना चाहता हू कि आप इस राजधानी के नागरिक है, बुद्धिमान् है। जीवन की स्थिति को समझने के लिए वाणी को शुद्ध करिए और कर्तव्यशील बनकर जीवन को सस्कारित करने की राह पर चल पडिए। स्वाध्याय, सामायिक प्रतिक्रमण रात्रि भोजन त्याग व्रत पच्चखाण विधिपूर्वक करिए और इतना करते हुए ध्यान यह रहे कि जीवन के वास्तविक रूप को समझे। इसकी तैयारी चातुर्मास मे निरन्तर करते रहे और इस भावना के साथ चलते रहेगे तो आप अपने कल्याण के मार्ग को प्रशस्त बना सकेगे।

लाल भवन

२५ जुलाई १९७२



ण याणंति अप्पणो वि किन्नु अण्णेसिं ।

—आ० चू० १।३।३

जो अपने को ही नही जानता वह दूसरो को क्या जानेगा ।

---

७ | आत्मिक शान्ति

"श्री दृढ रथ" नृप तो पिता, "नन्दा" थारी माय ।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय ।।
जय-जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणा निधि करतार ।
सेव्या सुरतरु जेहवो, वाछित सुख दातार ।।

यह प्रभु शीतलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है । प्रतिदिन प्रभु का नाम विभिन्न रूपो मे आ रहा है । आज प्रभु शीतलनाथ का नाम आया । आज ससार को शीतलता की आवश्यकता है । जब तक जीवन मे शीतलता का सचार नही होता है, तब तक मानव का मन सतप्त रहता है । कितना ही वैभव मिल जाय, कितने ही अधिकार प्राप्त हो जाय, कितनी ही डिग्रिया मिल जाय, लेकिन इन सबके मिलने पर भी शाति न मिले, शीतलता न आये तो उस व्यक्ति का जीवन, जीवन नही रहता । वह मनुष्य भले ही कहलाता हो, वह अपनी स्थिति से कुछ मानवीय कार्य भी करता हो लेकिन वास्तविक जीवन का जो आनन्द है, वह उसे नही ले पाता । इसलिए प्रभु शीतलनाथ के चरणो की उपासना का सकेत दिया गया है । हम

शीतलनाथ के स्वरूप को समझने की कोशिश करें। कवि ने प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए उपमा दी है कि—

शीतल चन्दन नी परे जपता निश दिन जाप।
विषय कषाय थी ऊपनी मेटो भव दुःख ताप॥

भगवन् ! आप चन्दन के समान शीतल हैं शीतलता प्रदान करें, अधिकांशतः आज के मानव का हृदय विषय और कषाय की आग से जल रहा है। एक भी प्राणी ऐसा दृष्टिगत नही होता, जो सासारिक अवस्था मे रहते हुए विषय और कषाय की ज्वाला मे न झुलस रहा हो। अधिकाश प्राणियो की स्थिति यह है कि वे मनुष्य रूप मे रहते हुए भी विषय और कषाय की आग से सतप्त हो रहे हैं। उस गर्मी को शात करने के लिए तदनुरूप किसी शीतल पदार्थ की आवश्यकता है।

बाहर से भीतर की ओर

जिस प्रकार शरीर मे जब गर्मी लगने लगती है, और कुछ फुसिया भी निकल आती है उस समय चन्दन का लेप किया जाता है। नमिराज ऋषि के वर्णन को आपने सुना होगा। उनके शरीर मे दाह ज्वर की व्याधि हो गई। वे उस दाह ज्वर से जलने लगे। हाय ! हाय !! करने लगे। परिवार के सदस्यो मे अशाति का वातावरण बन गया क्योकि सब सोच रहे थे, ये हमारे स्वामी हैं, जो हम सबका सरक्षण करने वाले हैं, भरण पोषण करने वाले है, आज उनके शरीर मे दाह ज्वर लग रहा है, हम कैसे शांति की सास लें ? जब उन्हे ज्ञात हुआ कि वैद्य ने बावना चन्दन का लेप बताया है तो फिर उस चन्दन का लेप करने मे कौन पीछे रहे, अनेक नौकर चाकर चन्दन घिसने के लिए तत्पर थे—किन्तु अत पुर मे रहने वाली महारानियो ने विचार किया कि इस प्रकार के सेवा के लाभ से हम वचित क्यो रहे ? स्वामी के शरीर मे दाह ज्वर लग रहा है, एक व्यक्ति, दो

व्यक्ति, एक नौकर, दो नौकर चन्दन घिसेंगे तो कितना घिसेंगे ? अत हम सबको मिल करके यह कार्य करना है- ऐसा सोच कर महाराणिया भी चन्दन घिसने मे जुट गईं। जव वे चन्दन घिसने लगी तो उनके हाथ के ककणो की आवाज होने लगी। वह आवाज महाराजा को अच्छी नही लगी। महाराज कहने लगे। मेरे इस दाह ज्वर के अन्दर यह आवाज नमक का काम कर रही है, पीडा और भी तेज हो रही है, मेरी अशाति वढ रही है, हालाकि मन पर उसका असर नही होता, लेकिन शरीर पर असर हो रहा है। चतुर व्यक्तियो ने राणियो को सूचना दी। उन्होने सब ककण निकाल लिये, सौभाग्य की दृष्टि से केवल एक-एक ही ककर्ण रखा। फिर वे चन्दन घिसने लगी। चन्दन घिसा गया, कुछ लेप हुआ तो महाराजा को शाति मिली। महाराजा ने पूछा—वह आवाज किसकी थी और अब बन्द कैसे हो गई ? तव उनको यह बात वताई गई, कि रानियो के हाथ मे जो ककण थे, वे आपस मे टकराते थे, इसलिए आवाज हो रही थी। बाद मे एक ही ककण रख लिया गया और बाकी के सब उतार दिये गये इसलिए आवाज बन्द हो गई। महाराजा उस समय विचार करते है, चिंतन करते है, यह बावना चन्दन मेरे शरीर पर लगाया जा रहा है, लेकिन मुझे इस चन्दन के लेप के साथ-साथ सोचना यह है कि यह दाह ज्वर व्याधि आई कहा से ? किसी बाहर के व्यक्ति ने मेरे शरीर के ऊपर कोई दाह ज्वर की शक्ति छोड दी ? ऐसा नही हुआ है। अनादिकाल से लगे हुए कर्मों के सयोग से यह व्याधि हुई है। कर्मो के कारण ससार अवस्था मे, परिवार, विषय और कषाय का जब तक सयोग रहता है तब तक ये सभी बीमारियाँ है, और इसी से यह दाह ज्वर हो रहा है। आज रानियो के हाथ के ककड निकाल दिये गये तो खट खट बन्द हो गई। जब बहुत थे तब खट खट पैदा कर रहे थे, एक रह गया तब खटखट का सवाल ही नही

रहा। इस निमित्त से राजर्षि आत्मचिंतन की ओर उन्मुख हुए और सोचने लगे कि आत्मा का स्वरूप परमात्मा के तुल्य है। परमात्मा इन विषय कषाय और परिवार के सयोग से सर्वथा परे हैं, जैसे वे परे हैं वैसे ही मेरी आत्मा भी प्रभु के तुल्य होने के नाते इन सबसे परे है, तो मैं इस सयोग के साथ क्यो चिपट बैठा हू और इस अमूल्य जिन्दगी को इन विषय और कषाय की आग मे क्यो जला रहा हू। जब उनमे इस प्रकार की आत्म-जाग्रति हुई तो वे भव्य अन्त पुर का परित्याग करके विषय और कषाय का सर्वथा नाश करने के लिए चल पडे और उन्होने तन मन की शीतलता के अनुभव के साथ आत्मिक शान्ति भी प्राप्त की। वन्धुओ ! आज मानव क्यो सतप्त हो रहा है। उसके मन मे जो दाह ज्वर से भी भयकर एक सन्ताप है वह सताप शारीरिक सताप की दृष्टि से नही है, लेकिन विषय और कषाय का सताप है। उस विषय और कषाय के सताप को समाप्त करने के लिए हम भगवान के स्वरूप का चिन्तन करे और सोचें कि हमारी आत्मा निखालिस परमात्मा का स्वरूप है, जितने बाहरी सयोग इसके साथ लगे हुए है, वे ककण की तरह ही खटखट पैदा कर रहे हैं। मनुष्य जितने जितने बाहरी पदार्थ पकडने की कोशिश करता है, वह उनके बँधन मे बँधता चला जाता है। जितनी अधिक विषयो की लालसा रखता है उतना ही वह अन्तर ताप को बढाता है, बेचैनी बढाता है—चाहे भव्य भवन हो, सुन्दर शय्या हो, लेकिन विषय और कषाय की आग उसके मन मे लग रही है तो उसको निद्रा नही आयेगी, वह हाय हाय करता हुआ शय्या पर करवटे वदलता रहेगा। रावण राजा के सोने के लिए कोमल फूलो की शैय्या बिछी हुई है लेकिन उसे निद्रा नही आ रही है, वह करवटें ले रहा है, उसे शारीरिक दुख नही था। लेकिन विषय और कषाय की आग मे वह जल रहा था। वह सोचता है कि मै परिश्रम करके राम की रानी को वगीचे मे ले आया हू, लेकिन वह मेरे नियन्त्रण मे नही

आ रही है। रावण इस प्रकार के भव्य भवन मे रह कर रावण जैसे व्यक्ति भी जब सतप्त हो सके है, तो आप सोचिये कि ससार के मनुष्यो की क्या दशा होगी,आज दुनिया मे अशाति है,गर्मी है,ताप है—इसके कारण को सोचा जाय तो विषय कषाय की ज्वाला ही उसका कारण परिलक्षित होगा। यह भयकर ज्वाला है, इस ज्वाला से छुटकारा पाना सहज काम नही है। इससे छुटकारा तभी हो सकता है, जब इन्सान आत्मिक तत्व के विषय मे स्थाई रूप से सोचे, और समझे—मेरी आत्मा अखण्ड है, मेरी आत्मा इन विषय कषायो से परे है—इस प्रकार के निर्णय की एक निर्णायक शक्ति जिस व्यक्ति मे आती है वह विषय कषाय की ज्वाला से ऊपर उठ सकता है। यह शक्ति कब आयेगी ? जब जीवन का निर्णय करेगा, जीवन का स्वरूप समझेगा।

समग्र परिभाषा

मैने कल जीवन की परिभाषा की थी, एक परिभाषा पहले भी रखी थी, जहा प्रश्न उठा था—कि जीवनम् ? जीवन क्या है ? इसको समझने का प्रयास करना है। जो जीवन का स्वरूप है, जीवन की परिभाषा है, वह परिभाषा इस प्रकार है।

सम्यग् निर्णायकं समता मयञ्च यत् तज्जीवनम्

जो सम्यक् निर्णायक है, जो समतामय है—वही जीवन है। सम्यक् निर्णय किस बात का ? इस विषय की कल बात अधूरी रह गई थी, लेकिन निर्णय करना आवश्यक है। जब तक मन मे सम्यग् निर्णय नही होगा तब तक आधि व्याधि, बाहरी ताप नही हटेगा। जिन्होने आत्म-निर्णय किया, ससार का निर्णय किया—वे निर्णय करके गतव्य मार्ग पर आगे बढ़े। आज के मानव को शीतल नाथ भगवान के चरणो मे बैठ कर जीवन का निर्णय करना है, जीवन को समझना है। जीवन वह है, जो स्व-पर का निर्णायक हो। निर्णायक

होने के नाते निर्णय की शक्ति को पहले समझना है। जहाँ आत्मा का स्वरूप आता है, आत्मा की शक्ति का विश्लेषण आता है—वहा कुछ मतभेद है। कुछ दार्शनिको का कथन है कि आत्मा नाम का तत्व कहा है, जो कि निर्णय करे ? आत्मा हमको दिखती नही है। जो पाच इन्द्रियो से नही दिखती है उसको कैसे मानें ? इन्द्रियो से परे दुनिया की बहुत चीजे हैं, लेकिन हम मानने को तैयार नही हैं। आज विज्ञान बढा चढा हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से लोग परीक्षण कर रहे है। लोग सोचते है, बस, विज्ञान की तुला पर जो चीज ठीक उतर जाय वही सही तत्व है। विज्ञान की तुला पर सही नही उतरे तो वह सही नही है। इस प्रकार जब विज्ञान प्रत्यक्ष वस्तु का प्रमाण देता है, प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मान कर चलता है तो हम अप्रत्यक्ष को कैसे मानें ? इस प्रकार की विचाराधारा चलती है। जब उनसे कहा जाता है कि भाई ! तुम सोचो, जब आत्मा नाम का तत्व नही हैं, तो जीवन क्या है ? बिना जीवन के शुभ-अशुभ का निर्णय कैसे हो ? जैसा कि आप सोच रहे हो प्रत्यक्ष जो दिखता है वह सब सही है तो यह भी एक प्रकार का निर्णय ही है। तो वताइये यह निर्णय लेने वाला कौन है ? उनका उत्तर आता है, यह निर्णय लेने वाला यह शरीर है ? शरीर के अतिरिक्त कोई तत्व नही है। **"शरीरमेव निर्णायकम्।"** शरीर ही निर्णायक है। वे ऐसा तर्क देते हैं। वह तर्क इस रूप मे देते हैं—शरीर को निर्णायक मानते हैं क्योकि यह पाच भूतो से बना है, पाच भूतो से शरीर वनने के वाद इसमे निर्णायक शक्ति तैयार हो गई। हम उस शक्ति से निर्णय लेते हैं, अत हम प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। वे इस तर्क के साथ अपनी बात का पोषण करते हुए यह उदाहरण देते हैं कि जैसे अलग-अलग महुवा आदि द्रव्यो मे मादकता नही है किंतु उनके सयोग से मादकता उत्पन्न हो जाती है। वैसे ही इन पाच भूतो के सम्मेलन से निर्णायक शक्ति का सर्जन हो जाता है।

क्या शरीर निर्णायक है ?

अपनी निर्णायक शक्ति का पता लगाना बडा ही कठिन काम है। अपना ज्ञान होने पर ही अपने निर्णायक का विश्वास जागता है। अपना ज्ञान और अपना निर्णायक, शाब्दिक दृष्टि से पृथक-२ दो शब्द अवश्य है। किन्तु जहा लक्ष्य का समाधान होता है दोनो एक ही भाव के प्रतीक हो जाते हैं। इस विषय मे अनेक लोगो के अनेक विचार हैं अनेक धारणाएँ है। कुछ यह कहते है कि--आपके सामने घडी है। वह टाइम बताती है। लेकिन जब इसके पुर्जे अलग-अलग थे तब तक वह घडी बोलती नही थी, आवाज नही देती थी जैसे ही पुर्जे एकत्रित हो गये वैसे ही इसमे खटखट की आवाज आने लगी, वह बोलने लगी, अब घडी इतना टाइम बता रही है। जैसे घडी मे टाइम देने की स्थिति आ गई वैसे ही शरीर मे पाच तत्वो के मिलने से आवाज आ गई। यह घडी इस कथन की पुष्टि करती है। इस प्रकार के चिन्तन वाले कुछ भारतीय भी है और कुछ पाश्चात्य विद्वान भी है। जो जडवादी है। उनमे थैलिस और एनाक्सीमान्डर, तथा ऐनाक्सीमेनेश आदि मुख्य है। वे अपनी मान्यता की दृष्टि से यह चिन्तन करते है। इस विषय मे आपको भी चिन्तन करना है क्या इन जड़वादियो का जो कथन है वह वस्तुत. सत्य है ? आपके सामने भी ऐसे कुछ विचारक व्यक्ति आ सकते है और कुछ ऐसे सम्भावित प्रश्न खड़े कर सकते हैं। यदि आप अपने जीवन के निर्णायक स्वरूप को समझे हुए नही होंगे तो आप उसका उत्तर नही दे पायेंगे और आप लडखडा जायेंगे। इस तरह आप शान्ति के मार्ग से भटककर मानसिक अशाति मे उलझ जायगे। निर्णायक शक्ति शरीर ही नही है यह जो कथन है कि "शरीर मेव निर्णायकम्" इस पर कोई विचारवान् व्यक्ति पूछ सकता है यदि शरीर ही निर्णायक है तो मुर्दा शरीर भी निर्णय करेगा। यदि वह ऐसा नही करता है तो उसकी निर्णय करने की शक्ति कहा चली

गई ? पाच भौतिक तत्व तो उसमे विद्यमान हैं ही। इससे यह स्पष्ट होता है कि पाच भौतिक तत्वो के अतिरिक्त स्वतन्त्र निर्णायक शक्ति है। यदि कोई कहे कि वह दिखती क्यो नही है तो उसका यह सोचना उस आदि युग की तरह का है। आज तो वैज्ञानिक युग भी चल रहा है जो वैज्ञानिक युग का प्रमाण देते हैं वे सिर्फ आँखो से दिखे उसी को तत्व मानते है, ऐसा नही है। उनकी दृष्टि लम्बी चौडी जा रही है। वे प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुभवो को भी मानते हैं। अत शरीर ही निर्णायक है और वही जीवन है यह युक्तिसगत नही है। पूर्व मे जो महुवा आदि का उदाहरण दिया गया था वह यहाँ पूणरूप से घटित नही होता है। क्योकि महुवा आदि जिन पदार्थों से मदिरा बनती है उनमे किसी न किसी रूप मे मादकता पहिले ही विद्यमान होती है वही सकलित रूप मे 'मदिरा' कहलाती है। जैसे प्रत्येक तिल मे पृथक-पृथक थोडा-थोडा तेल रहता है। उन तिलो को एकत्रित करके पेर दिया जाय तो उसमे से अधिक तेल निकल आयेगा। यद्यपि पहले उसमे तेल नही दिखता था किन्तु अधिक तिलो को पेर दिया तव तेल सग्रहित हो गया। वह तेल कोई नई चीज पैदा हो गई ऐसा नही है। वह तो तिलो मे, पहिले था ही लेकिन उस प्रकार का अश वालु मे नही है। रेत को कितना ही इकट्ठा किया जाय उसमे कुछ भी निकलने वाला नही है। पाँच भूतो मे प्रत्येक में चैतन्य नही है अत उनके मिलने पर भी चैतन्य उत्पन्न नही हो सकता। यथा वालु रेत। अत मदिरा का रूपक यहा युक्ति सगत नही है। यदि यह कहा जाय कि कुछ तत्वो के मिलने से निर्णायक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, तो यह सामने घडी लगी हुई है, इसमे अनेक पुर्जे लगे हुए हैं, यह आवाज भी कर रही है, क्या इतने मात्र से इसमे निर्णायक शक्ति मान ली जाय ? किन्तु ऐसा नही है, घडी अपना स्वय निर्णय नही दे सकती, उसका निर्णय करने वाला तो कोई और ही है, और वह है घडी साज ! यह घडी है इसमे घडी साज और घडी अलग २ तत्व है। घडी साज के बिना घडी मे

कोई कार्यवाही नही बनती है—घडी साज के विना उसमे आवाज नही होती। घडी साज समझता है कि यह घडी है। घडो के पुर्जे और काटे को वह यथास्थान रखता है। यह निर्णायक शक्ति उस घडी से भिन्न उस घडीसाज मे है इसलिये निर्णायक अलग है। इसी प्रकार घडी के समान यह शरीर बना है लेकिन इसका बनाने वाला घडी साज की तरह वह निर्णायक आत्मा है। वह इस शरीर से भिन्न है। और वर्तमान मे वह दूध पानी की तरह शरीर मे ओत-प्रोत होकर चल रहा है। अत शरीर मेव निर्णायकम् यह सिद्धान्त नितान्त हास्यास्पद है। साथ ही दूसरा जो यह कहा गया था कि "प्रत्यक्ष ही प्रमाण है" उनसे मै पूछना चाहूगा कि आपके १० पीढी के दादाजी थे कि नही ? प्रत्यक्ष तो है नही, तथा आपने उन्हे आखो से भी नही देखा है फिर आप कैसे मानते है कि हमारे दादाजी थे, किन्तु आपको वाध्य होकर अनुमान से ऐसा मानना ही पडता है। उस समय आप प्रत्यक्ष पर ही स्थिर नही रह सकेगे। आप यह कहेगे कि वर्तमान मे जो हम अपना शरीर देख रहे है इस शरीर का सम्बन्ध हमारे पिता के साथ है, और वे हमारे सामने मौजूद है इससे स्पष्ट है कि पिताजी के पिताजी भी थे और उससे आगे उनके भी पिताजी थे। इस प्रकार दादाजी तक सम्बन्ध का तारतम्य जुड जाता है। यह अनुमान का विषय है। जब आप वैज्ञानिक स्थिति से चिन्तन करते है तो वैज्ञानिक भी जहा अदृष्ट की खोज करते है तो वे भी अनुमान का सहारा लेते है। वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि इस विश्व मे कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो सृष्टि के लिये रहस्य बनी हुई है, जिसे खोजना है, इसके लिए उनकी दौड धूप चल रही है और अनेक वैज्ञानिक इस रहस्य को जानने के लिये अपनी जिन्दगी तक समाप्त कर चुके है। तब कही जाकर कोई नया आविष्कार होता है, अत विज्ञान भी अनुमान के आधार पर ही नई-नई खोजे करता है। इसलिये प्रत्यक्ष जो इन्द्रियो का विषय है वह इन्द्रियो तक ही सीमित है। इन्द्रियो के

सम्मुख जो पदार्थ हैं उनको भी हम पूरा नही देख पाते है। अभी आप यहा बैठे हुये हैं, इस लाल भवन मे आप क्या-क्या देख रहे हैं ? आपसे अलग अलग प्रश्न किया जाय कि आपको क्या-क्या दृष्टिगत हो रहा है ? आपकी आँखें क्या देख रही हे ? तो उत्तर आयेगा दीवार को देख रही हे, खम्भे देख रही है, दीवार पर टगी घडी देख रही हैं, और जो भाई वहिन यहा बैठे हुये हैं, उन्हे भी देख रही है, लेकिन इसके अतिरिक्त एक पोलार है, क्या इसमे कुछ देख पा रहे हैं। क्या इस पोलार मे कोई तत्व नही है। आप ऐसा न सोचें, क्योकि इसमे भी एक तत्व है। इसमे ठसाठस पुद्गल भरे हुये हैं और वे भी असख्य हैं। शास्त्र की दृष्टि से और वीतराग की दृष्टि से इसका आप थोडा सा अनुमान कर सकते हैं। ऊपर देखें तो आपको इस छोटे से छेद मे से आकाश दिखाई देता होगा। इसमे से सूर्य की किरणें आ रही हैं, इन किरणो मे आपको असख्य तूतडे उडते हुए दिखेंगे ये तूतडे इतने सूक्ष्म हैं कि दुग्धादि पदार्थों मे पडते समय आपको उनका भान नही हो पाता है। ये तूतडे सारे कमरे मे विद्यमान हैं वे आपको केवल सूर्य की किरणो मे ही दीख पड रहे हैं। छाया मे उन्हे आप नही देख पाते। आगे की स्थिति लीजिये, आप बादल देख रहे हैं, आप दूसरी चीजे देख रहे है। कुछ आख से नही दिखने वाली चीजें है, उनके लिए शक्तिशाली दूर वीक्ष्ण (माइक्रोस्कोप) यत्र का प्रयोग होता है उससे आकाश मे विद्यमान तत्वो को देखा जाय तो वहुतेरे तत्व आपको दिखने लग जायेंगे।

पानी मे भी जीव है ?

वीतराग देव ने आध्यात्मिक जीवन दृष्टि से यह बतलाया है कि पानी की एक बूद मे असख्य जीव है, लेकिन एक बूद पानी मे असख्य जीव हैं—इस बात का प्रमाण प्रत्यक्ष नही है। नास्तिक लोग इसे गप्प' मान सकते है। क्योकि पानी के जीव उन्हे प्रत्यक्ष नही

दीखते है, उनका कहना है कि पानी जड है, उसमे जीव कहा है। नास्तिक व्यक्ति के साथ कुछ विवेकी व्यक्ति होते है, जो आस्तिक कहलाते है वे भी कह देते है, हाँ साहब ? यह तो गप्प ही है, हम इसे नही मानते है। वह कहते है, शास्त्र मे यदि कोई बात गलत आ गई है तो उसको कैसे माने ? हम प्रत्यक्ष देख रहे है, पानी की बूद हाथ मे लेते है तो उसमे कुछ भी नही दिखता है। जो मानते है वह रूढिवादी है। किन्तु उस समय श्रद्धालु व्यक्ति, जो शरीर को निर्णायक नही मानने वाला है, शरीर से भिन्न आत्म तत्व को स्वीकार करने वाला, यही कहेगा नही, वीतराग देव ने जो कहा है, वह भले ही हमारी समझ मे न आये भले ही आख से दष्टिगत नही होता हो, किन्तु वह सत्य है, तथ्ययुक्त है। ये दोनो कल्पनाए पूर्व मे चला करती थी किन्तु आज वैज्ञानिको ने ऐसे यत्र तैयार कर लिए है, जिनसे एक बूद पानी मे चलते फिरते अनेक जीव दिखाई देते है। जो व्यक्ति कच्चा पानी पीते है, बिना छना पानी पीते है, न मालूम कितने जीवो को हजम कर जाते होगे, इसीलिए कहा जाता है कि बिना छना पानी नही पीना चाहिए। जो अज्ञानी है, जो नही समझते है, जो जीवन को सस्कारित करना नही चाहते है, जिनका जीवन निर्णय करने मे असमर्थ है— ऐसे व्यक्ति भले ही बिना छना पानी पीते हो लेकिन जिनके मन मे यह है कि हम निर्णायक है, हम समझते है, वे तो सभवत बिना छाना पानी नही पीते होगे। तो मैं बता रहा था कि कुछ दृष्टि से परे भी तत्त्व है, जिनमे से कुछ को वैज्ञानिक साधनो से देखा जा सकता है, चीटियाँ जब चलती है तो उनको पहले सुगन्ध आती है, वे उसके सहारे चल कर किसी चीज को खाने की कोशिश करती है। चीटी यह सोचती है, जितना खाना खा रही हू, जितनी सुगन्ध आ रही है, इतनी ही दुनियाँ है, इसके अतिरिक्त कुछ नही है। यह चीटियो का अज्ञान जो इस तरह सीमित है, वह समग्र दृष्टि से नही सोच पाती है। दयालु उन्हे परे हटा देता है,

लेकिन उसके पास सोचने का मस्तिष्क नही है जिससे कि जान सके, मेरे को हटाने वाला और है वह मुझ से भिन्न है। जो चीटियो की दशा है, वैसी ही करीब-करीब कुछ विकारी के साथ मक्खी-मच्छर, और पशु की है। पशु भी सोचता है, सिर्फ पशु जगत है, उससे आगे कुछ नही। इसी प्रकार मनुष्य भी यही समझले कि मेरे सामने जितनी सृष्टि है वही सब कुछ है उसके आगे सृष्टि नही है। उन्हे उन चीटियो के समान माना जा सकता है, उनके पास दृष्टि अवश्य है, बुद्धि भी है लेकिन कितना सोच पाते है। उन्होने ज्ञान का क्या विकास किया है। जिन्हे जीवन का लम्बा चौडा स्वरूप ज्ञात नही। उन्हे मैं क्या हू ? जीवन क्या है ? निर्णायक शक्ति क्या है ? यह पता नही है। वे इन्सान अदृष्यगृह्य शक्ति को कैसे जान सकते है। किन्तु आज के वैज्ञानिक ऐसा नही करते है, वे सोचते है, जितनी खोज हमने की है उतनी ही काफी नही है। उसके परे भी है। वे सोचते है, अभी हम बचपन की स्थिति मे चल रहे हैं। इससे आगे और चीजें हैं जो कि महत्वपूर्ण हैं। उनका जीवन और दिमाग खुला हुआ है। लेकिन विज्ञान का अध्ययन करने वाले, अखवार मे पढने वाले, इधर उधर की पुस्तको का अध्ययन करने वाले—वे सब यह समझ कर नही चलते हैं। वैज्ञानिक तो समझते हैं कि हमारा अभी बचपन है लेकिन पाठक समझते हैं, वैज्ञानिक देवता बन गये है, वैज्ञानिक जो कहते हैं वही सब कुछ है। इस प्रकार का निर्णय करना जीवन का निर्णय नही है। जीवन की शक्ति का निर्णय नही है। जो एक प्रश्न चल रहा है—मेरा है– किं जीवनम् ? जीवन क्या है ? पहले इसकी एक अधूरी परिभाषा रखी थी, अब एक दूसरी परिभाषा चल रही है।

अनिर्णय से निर्णय बोला

मैं जीवन की समग्र परिभाषा के विषय मे आपसे कुछ कह रहा था। आप जीवन मे निर्णय शक्ति को जीवित कर लें, उसको समझने

की कोशिश कर ले तो जीवन के शिखर तक पहुच सकते है,जीवन के प्रश्न को हल कर सकते है। जीवन क्या है ? इस स्थिति को जिसने समझा है वह व्यक्ति ठीक तरह से चल पडा है। जिसने नही समझा है वह भौतिकवाद पर चला, जीवन के झझावात मे फँसा और विषय और कषाय की आग ने उसे जलाने की कोशिश की। कल मैं एक रूपक रख रहा था। उसमे प्रसग चल रहा था कि इधर सासू, ससुर और पतिदेव इन तीनो की निर्णय शक्ति गायब है, सबकी निर्णायक शक्ति योग्यता की दृष्टि मे विद्यमान है, लेकिन मन असस्कारित है। हीन दृष्टि से उन्होने सोच लिया, एक व्यक्ति ने अर्थात् सासु ने जो कह दिया, वही ठीक है। वही गोविन्द करे। माता पिता जोर देकर कह रहे थे, गोविन्द, तुम्हे हमारी बात माननी पडेगी। तुम इस प्रकार हमारे से अलग नही रह सकते। तुम सोचते हो, यह कन्या तुम्हे बहुत प्रेम करती है, तुम्हारे प्रति स्नेह दिखाती है लेकिन यह इसका कपटयुक्त चलन है। इसके जीवन पर तुम्हे विश्वास नही करना चाहिए। तुम बिना स्त्री के रह जाओ तो भी कोई बात नही। तुम्हे और कन्या मिल जायेगी, तुम फिक्र मत करो। हमारी बात को समझ कर निर्णय शीघ्र करो। आखिर वह तरुण विनयशीलता के साथ दबा हुआ माता पिता के समक्ष बोल नही सकता, उसने दबे स्वर से कहा, पिता श्री, आप और मातु श्री जो बोल रहे हैं। मैं उसको तथ्य-युक्त समझ लूँ लेकिन तथ्ययुक्त समझने के पश्चात् मुझे क्या करना है। आगे तो समझा दीजिये। तो माता बोल उठी, पुत्र क्या करना है ? इसको समाप्त करना है। माता मनुष्य की हत्या, और वह भी पत्नी की हत्या, इसको समाप्त करने का। यह सकल्प अटपटा सा लग रहा है। अगर यह अनिष्ट है, और आपकी दृष्टि मे ठीक नही है तो इसको क्यो नही इसके पिता के यहा भेज दिया जाय। पुत्र का उत्तर सुन कर माता तडप उठी, पुत्र तू नही समझता है। यह बद-चलन स्त्री है, पर अभी इसके परिवार वालो को मालूम नही हुआ है,

सम्बन्धियो को भी ज्ञात नही हुआ है, लेकिन जब इसको वहा भेज देंगे और कुछ दिन तक नही लायेंगे तो बाद मे लोगो मे चर्चा का विषय बनेगा। इससे हमारा मुँह काला हो जायगा इसलिए पिता के यहा छोडना ठीक नही है। इसका तत्काल इलाज करना है। आज सूर्य अस्त हो उसके पहले पहले। गोविन्द ने कहा, माता श्री! मैं नही समझ पा रहा हू। कैसे इलाज हो। इतने मे पिता चिन्तन करके कहता है, पुत्र मेरे मस्तिष्क मे एक उपाय आ गया है। जगल के बीच मे एक अपनी बगीची है, उस बगीची अन्दर पेडो के बीच मे एक भयकर कुआ है। इसको तुम बगीची की हवाखोरी करने की दृष्टि से वहा ले जाओ और कुए के नजदीक ले जाकर कुए मे धक्का दे देना। जब कुए मे गिर जाय तब कुछ देर तक तो मत बोलना। थोडी देर के बाद हल्ला करना। कुछ रोना, हाय यह क्या हो गया, मेरी पत्नी कुए मे गिर गई। जितने प्राणी वहा होगे उन तक तुम्हारी पुकार पहुच जायगी। बगीची के जो रक्षक हैं वे हमारे पास पहुचेंगे। हमारे पास समाचार आयेगा तो हम भी पहुच जायेंगे। और सब कार्य ठीक हो जायगा। यह उपाय ठीक लगा। आप देखिये, यह निर्णय हो रहा है। यह कैसा निर्णय हो रहा है? यह सस्कारित जीवन का निर्णय है? यह जीवन का निर्णय है या अधकार का निर्णय है? आप सोचेंगे, ऐसा कृत्य नही हुआ होगा। आज के जमाने मे ऐसे कृत्य नही होते हैं? मैं क्या बताऊँ, मेरे कानो मे ऐसे कुछ कुछ शब्द आ जाते हैं। वैसे कृत्य नही होते हैं, लेकिन चांदी के टुकडो के लिये इससे भी भयकर कृत्य होते हैं। सुनने को मिला, एक कन्या का विवाह हुआ। उसके बाद ससुराल वालो के मन मे आया, इस कन्या के साथ पैसा कम आया है। इसको खत्म करो। दूसरी कन्या के साथ विवाह करेंगे तो और पैसा आयेगा। इस कारण उस कन्या को जला दिया है या दूसरे तरीके से खत्म कर दिया जाता है। ये ऐसे अन्याय और अत्याचार कभी कभी कर्णगोचर होते है। आप

कहेगे, महाराज, कहानी बहुत होती है । कहानी का जिक्र मैं कर रहा हू, वह मै इसलिए कर रहा हू, जीवन अधकार मे पडा हुआ है, आप कहेगे अधकार क्या है ? अधकार ऐसी वृत्तिया है, इस प्रकार की मानसिक भावना है जिनके कारण मानव जीवन को नही समझ पा रहा है, ठीक तरह से निर्णय नही कर पा रहा है । ऐसी अवस्था मे मै धम समझाऊँगा तो किसको समझाऊँ । जो अज्ञानी है जिनका अज्ञान का पर्दा नही हटा है वे जीवन को क्या समझेगे ।

और जो कुछ होगा धर्म पर आयेगा और धर्म पर आयेगा तो वास्तविक दृष्टि के रूप मे होगा । फिर भी मैं धर्म की परिभाषा को सरल करने की कोशिश कर रहा हू । वह निर्णायक शक्ति आपके मस्तिष्क मे तभी आयेगी जब आप अज्ञान से रहित होगे । जब आप समझ जायेगे कि अब ब्लेक मनी कमाने की आवश्यकता नही है, काला बाजारी करने की आवश्यकता नही है, आदि पर शान्ति के क्षणो में जब इस प्रकार को भावना वनेगी तब कार्य बन सकेगा । इस भावना से ही सन्त भी कहते है पर उसका असर सुनने तक ही रहता है उसके बाद वही दौड धूप उसी ढग से चल पडती है । और उसी वातावरण मे रहते है । आप यह कहे कि ऐसी बाते नही कहू तो फिर कौनसी वाते कहू । ऊची ऊची वाते कहूं तो आप सुनेगे नही । क्योकि वे वाते आपके दिमाग मे बैठती नही है कारण स्पष्ट है कि दिमाग मे अन्यान्य वातें भरी रहती है । आप यह जानते हैं जिस मकान मे बैठना है उसमे पहले झाडू देते है । उस मकान को साफ करते है । फिर उसमें वैठते है उसी तरह आप अपने दिमाग को भी झाडू देकर वैठे । आपको इस वात पर कुछ चिन्तन करना है । आज का मानव अपने आप मे दरिद्री वना हुआ है । कैसे निम्नस्तर की भावनाये उसके दिमाग मे घर कर रही है, जो किसी तरह कन्याओ को जलाकर स्त्रियो को मारकर पैसा कमाने के लिए नये-नये विवाह करें—क्या आप उनको मनुष्य कहेगे । न जाने आप तो

सर्टिफिकेट देंगे या नही, लेकिन ज्ञानी जन तो देगे । ज्ञानी जन कहेगे यह जीवन का निर्णायक स्वरूप समझने वाला नही है ।

सत्य सिहर उठा

मैं अब आपके सामने उन तीन प्राणियो माता, पिता और पुत्र की वात रख रहा हू । पिता ने निर्णय लिया और पुत्र को कहा कि पुत्र वधू को दूर जगल मे ले जाना है और वहा जाकर इसकी हत्या करनो है। उन्होने चरित्र की शका के कारण यह कार्य किया, पैसो के लिये नही किया। पुत्र ने दवे मन से पिता की बात स्वीकार की और अपनी पत्नी के कमरे मे गया। ऊपर से कृत्रिम मुस्कराहट को लेता हुआ अपनी पत्नी से कहता है कि प्रिये, बगीचे मे घूमने को गये बहुत दिन हो गए चलो आज बगीचे मे घूम आये। वह पवित्र हृदय वाली जिसके मन मे कपट नही है, छल नही है और अपने पति देव को ही सर्वस्व समझने वाली है। कहती है प्राण नाथ, जैसी आपकी आज्ञा। मैं सदैव आपकी आज्ञा के लिये हाजिर हू। पति देव ने कहा—चलो तैयार हो जावो। वह वस्त्र पहिन कर चट से साथ हो गई। घर से बाहर निकलकर तागा लिया और दोनो उसमे बैठ गये। पतिदेव कुछ कृत्रिम बातें करते हुए जा रहे थे और मन मे उथल-पुथल मची हुई थी लेकिन उनकी प्रिया के मन मे न तो किसी प्रकार की उथल-पुथल थी और न किसी प्रकार की घवराहट थी। वह गभीरता से बैठी हुई थी। चिन्तन कर रही थी, मेरा सौभाग्य है जो मुझे ऐसे पतिदेव मिले हैं। बगीचे मे जाकर दोनो घूमने लगे लेकिन गोविन्द के मन मे तो उथल-पुथल मची हुई थी। वह अलग ढग से चल रहा था। कभी कुछ चिन्तन करता है तो कभी कुछ सोचता है। यह अवोध वाला आज मेरे साथ किस प्रकार का वर्ताव कर रही है और मैं आज कैसा निष्ठुर बन रहा हू। मैं पत्थर का वन कर माता-पिता की आज्ञा को स्वीकार कर

इसके जीवन को समाप्त करने को तैयार हो रहा हू। वह अपने आप मे सोचता है हाय गोविन्द क्या तू मानव है ? या दानव है—वह अपने आपको कोस रहा है, लेकिन उसके दिमाग का पर्दा नही हट रहा है। ऊपर से मुस्कराहट की बात करता रहता है। वह अपनी प्रिया से कहता है कि प्रिये, वहाँ पानी से भरा हुआ एक कुआ है, वहा चले। वह अपने पैर लडखडाता हुआ पत्नी को लेकर उस कुए की पाल पर पहुचता है। पाल पर पहुच कर वह अपनी पत्नी की ओर देखता है और मन मे विचार करता है हाय आज तू हत्यारा बनकर अपनी पत्नी को कुए मे धक्का देकर उसका प्राणघात करेगा। पत्नी कहती है यह कितना भयावह दृश्य है, कितना वियावान जगल है किन्तु आप मेरे साथ है इसलिये मुझे किसी बात का भय नही है, बाकी एकाकी आ जायँ तो हार्ट फेल हो जाय लेकिन मुझे निश्चिन्तता है क्योकि मैं पतिदेव के चरणो मे हू। भयानक से भयानक जगल भी हो तो मेरा कल्याण है। इन बातो को सुनकर उसका दिल दहल गया और सोचता है कि जिस पत्नी के साथ मैं इतने दिन तक रहा, कभी दुर्लक्षण नही देखा। कदाचित कुछ होता तो कुछ सकेत मिलते। कुछ समझ मे नही आ रहा है। यह तो मेरे प्रति इतना विश्वास लेकर चल रही है, मुझे परमेश्वर के तुल्य समझ कर चल रही है, फिर यह सारा प्रसग कैसे वन रहा है, इस प्रकार के कुछ शब्द सहसा उसके मुँह से निकल पडे तो वह कहने लगी प्राण नाथ, यह विश्वास आज का नही है वहुत पहले का है जवकि मैं अपने घर पर पिता के पास रहती थी उस वक्त मुझे माता का सस्कार तो पूरा नही मिल पाया लेकिन पिता श्री मुझे सत्सग मे ले जाते थे और कभी कभी सन्तो से प्रश्न किया करते थे। प्रश्नो के साथ-साथ कभी यह प्रश्न भी रख देते थे कि महात्मन् ? यह वतायें पुरुप तो अनेक तरह की धर्म क्रियाये करके अपने जीवन

का उद्धार कर सकते हैं लेकिन यह अबला। जाति अपने जीवन का उद्धार किस प्रकार कर सकती है?

अबला, नही सबला है।

साधारण भाषा मे नारी को 'अबला' भी कहा जाता है। जहा तक विशुद्ध आत्मिक दृष्टि का प्रश्न है, यह शब्द उपयुक्त नही लगता! हा, जब आत्मा अपनी शक्ति को भूल बैठती है, ऐसी स्थिति मे उसे 'निर्बल' सज्ञा मिल जाती है। किन्तु यह सज्ञा उसकी वास्तविक सज्ञा नही है। यही तथ्य अबला के विषय मे जान लेना उपयुक्त रहेगा। सत पुरुषो का कथन है कि—नारी जाति मे भी वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह जीवन के सही रूप को पाकर अपना उद्धार कर सकती है। साध्वी बनकर, तपचर्या करके अपने जीवन का उद्धार कर सकती है। पिता श्री यह कहते नारी जाति किस प्रकार अपने जीवन को रखे? तब महात्मा जी ने कहा—नैतिकता की दृष्टि से हर बात को सोचे—विचारे और गृहस्थ धर्म मे रहते हुये भी पूर्ण पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिये और एक पतिदेव को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझना चाहिये। जो स्त्री अपने धर्म का पालन करती हुई अपने जीवन को पतिनिष्ठ होकर रखती है वह आध्यात्मिक शक्ति को प्रवाहित करती है। वह धर्म पत्नी के रूप मे रहे, पाप पत्नी के रूप मे नहीं हो और उस पत्नी का यह कर्तव्य होता है कि मेरे पतिदेव गैर रास्ते पर न चले जायँ मेरे पति कोई बुरा काम न करें। ऐसा आध्यात्मिक जीवन का उत्तरदायित्व वह धर्मपत्नी लेकर चलती है। इसलिये शास्त्रो मे उसे धर्मपत्नी कहा गया है-धर्म सहायक कहा गया है। परिवार के सारे सस्कार एक अच्छी पत्नी पर आश्रित होते है इसलिये ग्रहस्थाश्रम मे रहते हुए भी अपने जीवन की शक्ति को सम्पादित करना चाहिये, तभी वह जीवन के वास्तविक

स्वरूप को समझ सकती है। ये सब बातें मैंने सत्संग में सुनी, जो आज कुछ मेरे जीवन में आ गई है। बचपन के अन्दर बच्चों में जो संस्कार बन जाते है वे दीर्घकाल तक रहते है। आज तक मेरे मन मे भी वे संस्कार पड़े हुए है। इसलिए बार-बार कहा जाता है कि बाल बच्चों को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षण देना चाहिए, जितना आध्यात्मिक जीवन का शिक्षण दिया जाए उतना ही उनका जीवन आगे जाकर सुन्दर बन सकता है। वह शिक्षण आज कितनी मात्रा मे हो रहा है? मा-बाप कितना अपने बच्चो को सम्भाल रहे है? आज कितना धार्मिक शिक्षण दिया जा रहा है। यह तो एक-एक व्यक्ति से हिसाब लिया जाय तो पता लगे। इन्सान की निर्णायक शक्ति जिस रूप मे और जिस रफ्तार मे चल रही है वह बेढगी है। मैं इस विषय पर ज्यादा नही कह रहा हू सिर्फ यह कहना चाहता हू कि धार्मिक संस्कारो मे उस बहिन का जीवन कितना ऊपर आया। अब गोविन्द अपनी प्रिया से पूछता है जब तुम बचपन से ही ऐसे संस्कार को लेकर चल रही हो, और पतिव्रत निष्ठा को लेकर चल रही हो तो मेरे सामने तुम सच-सच बाते करोगी या कुछ छिपाकर रखोगी। पतिदेव आप क्या सोच रहे है मैंने जिन्दगी मे कभी आपसे कोई रहस्य नही छिपाया। जब मैंने आपको अपना सर्वस्व ही अर्पण कर दिया तो फिर छिपाकर रखने की ऐसी कौनसी बात आ गई। आप जो कुछ पूछना चाहते है, पूछिए। मैं खुले दिल से उत्तर देने को तैयार हू। गोविन्द सोचता है कम से कम इसको खत्म करने से पहले मै निर्णय कर लूँ कि वस्तुत बात क्या है? उसने प्रश्न किया प्रिये, आज प्रात काल अपनी हवेली मे साधु आया था। पत्नी ने जवाब दिया हा प्राणनाथ आया था। तो तुमने क्या किया। पत्नी कहती है मैंने उसको भिक्षा बहराई। गोविन्द पुन पूछता है और क्या-क्या, किया? क्या-क्या बोले? तो पत्नी ने कहा बोला क्या।

उसको मैंने सकेत किया वह भिक्षा लेने के बाद हवेली को देखने लगा तो मैंने सकेत मे कहा तुम्हारा एक गया तो उसने इशारे मे कहा तुम्हारे दो गए तो फिर मैंने उत्तर दिया तुम्हारे तीन गए— यह बात हुई थी। गोविन्द ने कहा प्रिये, यह तो तुमने सच सच कहा लेकिन यह क्या एक गया, दो गया, तीन गया इसको समझा दे— उसके दिल की खुलने लगी और उसने सोचा वस्तुत निर्णय करना चाहिए। मनुष्य के जीवन मे निर्णायक शक्ति नही आई तो वह मनुष्य वेकार है। इस भावना से गोविन्द कुए के पाल से हटकर एक पत्थर की चौकी पर आकर बैठ गया और तीनो वातो के रहस्य को समझने के लिए कहा। अब बहिन तीनो वातो को बताना चाह रही हैं और गोविन्द भी सुनना चाहता है लेकिन आपकी घडी टाइम वता रही है। उस दृष्टि से, शहर का मामला है, जौहरी लोगो का क्षेत्र है, अत टाइम से काम किया जाय तो ठीक है। यह आज का प्रश्न नही है। टाइम आएगा तो फिर आपको बतायेंगे। इस जीवन के प्रश्न पर आपको भी विचार करना है और मुझे भी विचार करना है। जो जीवन को परिभाषा की है उसमे आप चिन्तन करिये। वह निर्णायक शक्ति आप मे आई है या नही और अगर निर्णायक शक्ति आप मे आ गई तो आप शीतल चन्दन का लेप करके जीवन की तमाम शक्तियो का विकास करते हुए, शान्ति के मार्ग का प्रचार करते हुए शान्ति के अग्रदूत बन सकेगें।

लाल भवन,

२६ जुलाई ७२



मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।

—उत्तराध्ययन २३।५८

यह साहसिक भीम मन, दुष्ट अश्व के समान सदा दौडता रहता है ।

---

८ | मन का मनका

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे ।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चचल थिर कर रे ।।
श्रेयास जिनन्द सुमर रे ।।।
सास उसास विलास भजन को, दृढ़ विश्वास पकर रे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये विच सो सुमरन जिनवर रे ।।
श्रेयास जिनन्द सुमर वे ।।।

यह प्रभु श्रेयास देव को प्रार्थना है । प्रार्थना की इन कडियो मे चेतन को सम्बोधन किया है, चेतना एक आत्मिक शक्ति है, इस शक्ति से मनुष्य को समग्र जीवन का और समग्र ससार का ज्ञान होता है । चेतना शक्ति के बल से ही हित और अहित को पहिचाना जा सकता है । चेतना शक्ति के दृढ संकल्प से ही इन्सान अपने कार्य मे सफल होता है । ऐसी चेतना शक्ति को सबोधित करके कवि ने सकेत दिया है कि—

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण मन चचल थिर कर रे।

हे चेजन, यह कल्याण करने का सुन्दर अवसर मिला है। इस मे जो मनुष्य जन्म मिला है तो यथा सम्भव शान्ति से शास्त्रो का श्रवण कर। शास्त्र श्रवण का प्रसग है, ऐसे अवसर पर हे चेतन, तू प्रमाद मे मत रहे। कदाचित कोई यह कल्पना करें कि मैं इस समय प्रभु के स्वरूप को कैमे पहिचानू ? क्योकि परमात्मा मेरी इन चमडी की आखो से नही दीखता है। मैं अपनी इन्द्रियो से प्रभु का सही ज्ञान नही कर सकता हू। तो यह कल्पना असगत है क्योकि यह इन्द्रिय जन्य ज्ञान सीमित है। उनका दायरा छोटा है। इन्द्रिया अमुक सीमा तक ही वस्तु का ज्ञान कर सकती है। आगे उनकी गति नही है। मन की स्थिति का भी चिन्तन करू तो मन की गति भी ऐसे तो वहुत तीव्र है, लेकिन तीव्र होने पर भी वह भी सीमित ही है। अत प्रभु के वास्तविक स्वरूप को समझने मे वह मन भी समर्थ नही हो सकता है। मन के माध्यम से कल्पना कर सकते हैं। तो मैं प्रभु को कैसे स्मरण करू, और कैसे मैं आत्मा का कल्याण कर सकू ? इसके लिये बुद्धि के सामने एक प्रश्न वाचक चिन्ह बन ज ता है। इस प्रश्न का उत्तर कवि ने साथ ही दे दिया है कि त अपने इन्द्रिय और मन से प्रभु को पहिचानने मे समर्थ नही है। अत शास्त्र के प्रमाण की बात कही गई कि—

शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण मन चचल थिर कर रे।
श्री श्रेयास जिनन्द सुमर रे॥

शास्त्र मे प्रभु के स्वरूप का वडा ही सुन्दरतम वर्णन है। शास्त्र के प्रमाणो से तुम प्रभु के स्वरूप को पहिचान कर इस चचल मन को स्थिर कर लो। मन के स्थिर हुए विना उस आत्मिक स्वरूप का दर्शन नही होगा। मन जितना चचल है उतनी ही आत्मा की शक्ति चचल होती है। मन के सहारे आत्मा की शक्ति प्रवाहित होती है।

इन्द्रिय तक भी मन के माध्यय से ही पहुँचा जाता है और बाहर के पदार्थों का भी मन से ही चिन्तन किया जाता है। इसलिये इस चचल मन को एक स्थान पर केन्द्रित कर दो। जो श्रेष्ठतम स्थान है जिस स्थान को छोडकर अन्य श्रेष्ठ स्थान नही है। यदि उस श्रेष्ठ स्थान के चिन्तन मे मन को लगा दिया तो वह इधर-उधर नही भटकेगा। किन्तु यदि किसी अभद्र या अधूरे स्वरूप में मन को केन्द्रित करने का प्रयास किया गया तो वह रुक नही सकेगा। उसकी स्वाभाविक चचलता वढेगी और एकाग्रता उससे परे होगी। आप देखते है कि जब बच्चे के सामने एक खिलौना रखा जाता है, तो वह उस खिलौने को देखने की कोशिश करता है लेकिन जब उसकी दृष्टि आगे की ओर गिरती है तो उसके मन में जिज्ञासा पैदा होती है और बच्चा अपने सरक्षक से पूछता है कि यह क्या है? जब उसको दूसरी चीज बतायी जाती है तो फिर वह आगे का प्रश्न करता है। बच्चे का यह स्वभाव है कि वह जानकारी के लिये तन्मय हो जाता है और आगे का प्रश्न करता है। कब तक करता रहता है जब तक कि वह अपनी समझ के अनुसार सतुष्टि नही कर लेता है। बच्चा तो शरीर की दृष्टि से ऐसा ही है लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये तो यह मन भी बच्चे के तुल्य है। बच्चे को समझाना सहज है। बच्चे की गति को रोकना सरल है। बच्चे को तुष्टि देना मनुष्य के बूते की बात है लेकिन मन को रोकना यह मनुष्य की शक्ति से थोडा परे जा रहा है। मन की गति को कन्ट्रोल करना और तुष्टि देना यह प्रत्येक मनुष्य के बूते की बात नही है। इस मन को अगर स्थिर करना है तो आप छोटे-छोटे जितने लक्ष्य है, जो चचल पदार्थ हैं जो नाशवान हैं, उन पदार्थों से उसको हटाकर अविनाशी, अटल और स्थायी तत्वो पर केन्द्रित करिये जिससे स्थिर तत्व या स्थायी स्वरूपपर केन्द्रित होने के कारण उसमे भी स्थिरता आए। वह स्थायी तत्व नही हिलेगा तो मन भी नही हिलेगा और यदि मन उसके साथ एकाकार



जो सब प्रकार के मदो—अहकार के
कारणो का त्याग करके सदा धर्मध्यान
मे लीन रहता है, वही सच्चा भिक्षु है।



परम श्रमण आचार्य देव **श्री नानालालजी म०**

के

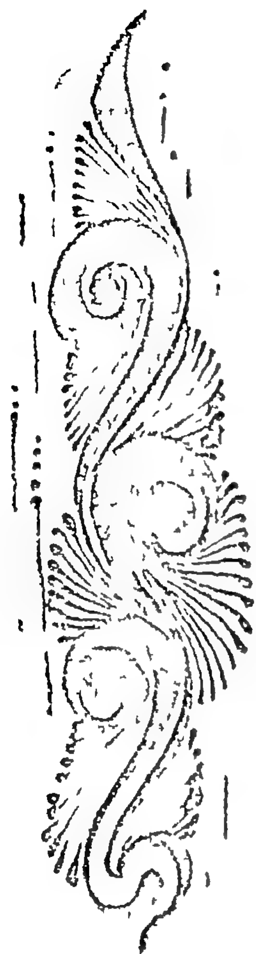
पावन-प्रवचन हम सबके लिए

मार्गदर्शक हो—यही शुभ कामना !



भीखमचंद झूमरमल सेठिया

भीनासर (बीकानेर)



धर्म-धुरा-धुरीण

प्रवचन-कला-प्रवीण

परमादरणीय आचार्य

श्री नानालालजी म० सा०

के

पावन चरण कमलो मे

हार्दिक अभिनन्दन



मोहनलाल बुलाखीचन्द चौरड़िया

(कपडे के व्यापारी)

अलीपुरद्वार (जलपाई गुडी)

वन गया तो आत्मा के कल्याण का मार्ग वहा शीघ्र ही प्रशस्त बन सकता है। यदि तुमने मन को उस स्थायी तत्व पर नही टिकाया, नाशवान तत्वो पर मन को केन्द्रित किया तो थोडे समय तक तो वह रहेगा, लेकिन जड पर केन्द्रित होने से वह जड पदार्थ गिर जायगा, बिखर जायगा तो भागेगा और सोचेगा कि अब मैं किसको पकड़ूँ ? कल्पना करिये एक कपूर डलो है। कपूर की डलो के ऊपर मनुष्य अपने मन को केन्द्रित कर ले और यह सोचले कि मेरा मन कपूर से सम्बन्धित है, यह कपूर साफ है, श्वेत है। इसके साथ मेरा मन भी सम्बद्ध है और वह भी इसके समान श्वेत बने, काला न रहे, इसमे कोई धब्बा न रहे। इस भावना से कपूर की डलो पर अपने मन को केन्द्रित कर लीजिये और भावना यह रखें कि यह कपूर की डलो ऐसी की ऐसी रहे। उसमे कोई परिवर्तन नही आवे। यह ऐसी की ऐसी रहेगी तो मेरा मन भी ऐसा ही बना रहेगा। इस भावना से कपूर की डली के ऊपर अपने मन को केन्द्रित कर दीजिये। लेकिन यह कपूर की डली, या वह कपूर की टिकडी कितने समय तक उस रूप मे रह सकेगी ? क्या वह स्थिर रह सकेगी ? वैसा का वैसा रूप उसका स्थिर रहेगी ? क्या इसका कभी आपने अनुभव किया है। कपूर का उडने का स्वभाव है। वह खुला पडा रहा तो जल्दी ही उड जायेगा। और कदाचित मनुष्य उसे उडने से रोकने के लिये अपनी मुटठी के अन्दर बाध लेता है और यह सोचता है कि इससे यह उडेगा नही लेकिन फिर भी कपूर उडेगा ही। जब वह चीज उड गई तो कैसे उसके ऊपर मन टिकेगा। आप मन को उस पर केन्द्रित करना चाहते थे, उस पर मन को स्थायी करना चाहते थे, लेकिन कपूर की टिकिया तो उड गई। तो आप ज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करिये कि कौन कौन से पदार्थ ऐसे हैं जो कपूर की टिकिया के स्वभाव के नही है ? कौन से पदार्थ स्थिर हैं जिनके ऊपर मेरा मन सदा स्थिर बन जाये। यदि इस प्रकार का चिन्तन करने के लिए

संसार के पदार्थो का परीक्षण करते जायेगे तो मैं समझाता हू कि जितने पदार्थ आपकी दृष्टि मे आ रहे है,वे सारे के सारे उस कपूर की टिकिया के मानिन्द ही मालूम होगे। क्या ऐसा कोई भौतिक तत्व है जो कि विखरने वाला न हो। शास्त्रीय दृष्टिकोण से चाहे कैसा भी चित्रण करे यह खम्भ आप देख रहे है, यह मजबूत है, आपको दिखाई दे रहा है। शास्त्रीय दृष्टि से खम्भ मे परमाणु उड रहे है, प्रतिक्षण इसमे परमाणु प्रवेश कर रहे हैं और निकल रहे है। हमारी चमडे की आँखें इसको समझ नही पा रही है। शास्त्रकारो का कथन है कि जो सपदा बनी है वह सम्पदा ज्यादा से ज्यादा अगर रहे तो असख्य काल तक रह सकती है, उसके बाद तो सारी की सारी बिखर जाती है। अब आप सोचिये कि मन को केन्द्रित करने के लिये किस पर टिकाना है। कभी कभी हठ योग की प्रक्रिया से साधक को बताया जाता है कि मन को केन्द्रित करने के लिये त्राटिक करे। त्राटिक का मतलब यह है कि एक चिन्ह कही दिवाल पर या किसी स्थान पर लगा दिया जाता है वह वहाँ पर दृष्टि लगाकर मन को केन्द्रित करने की कोशिश करता है। मनुष्य मन से हैरान है। मन की गति से मनुष्म घबराया हुआ है और कही सहारा मिलता है तो उस तरफ भी व्यक्ति प्रयत्न करता है। धार्मिक क्षेत्र मे विचरण करने वाले महात्माओ ने भी भगवान् के चरणो मे आन्तरिक निवेदन कर दिया और उन्होने भी कह दिया कि भगवन् ? इस मन को मैं कैसे स्थिर करूँ।

कुथू जिन मनडू किम् हिनिवाजे।
जिम जिम जतन करीने राखू, तिम तिम अलगू भाजे हो ।। कुथू जिन ।।
रजनि विचारे वस्ति उजाडे, गहण पाया ले जाय।
सांप खाद्य ने मुखढ थोथू एम ओलखिए न्याय ।। कुथू जिन ।।

कवि आनन्दघनजी अपनी साधना करते करते हैरान हो गये

और भगवान् कुन्थुनाथ से कहने लगे, भगवन् ! बताओ, यह मेरा मन क्यो वश मे नही आता है ? मैं इसका कितना ध्यान रखता हू, कितना इसको लाड प्यार करता हू, यह मन जिस वस्तु की भी चाहना करता है वही वस्तु मै इसको देता हू, मन अमुक रूप देखता है तो दिखाता हू और अमुक स्थान पर ले जाना चाहता है तो ले जाता हू, जैसे जैसे यह कहता है वैसे वैसे मै इसका लाड प्यार करता हू। लेकिन यह सब प्रयत्न करने पर भी यह मन मेरी कुछ भी बात नही मानता और दूर दूर भागता रहता है। रात और दिन इस हैरानी से हैरान हू। दिन को भी यह ज्यादा देर तक एक जगह नही टिकता, जागृत अवस्था मे भी दिन भर यह मन स्थिर नही रह कर इधर-उधर वेकाबू भागने लगता है और सोता हू तो भी यह हैरान करता है, शान्ति से मै विश्राम नही कर सकता, यह मन चचल बना रहता है और ताने वाने बुनता रहता है, कितने ही जाल बनाता है। हे प्रभु ! मै इस चचल मन को किस प्रकार वश मे करूँ ? जब आध्यात्मिक रस मे रमने वाले महात्मा और कवि भी हैरान हो गये तो दूसरो का तो कहना ही क्या ?

आज मन को वश मे करने के तरीके अजीब से है। त्राटिक मे दृष्टि उसकी ओर लगायी जाती है, दृष्टि को उस पर गढा कर बैठ जाता है, पलक नही गिरने देता है। लेकिन मन तो फिर भी विचलित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि दृष्टि की रोशनी मद पड जाती है, लेकिन मन को स्थिर नही कर पाता है। हठयोग मे ऐसे अनेक खतरे आ सकते है जिससे मनुष्य की जिन्दगी व्यर्थ सी हो जाती है। आपने सुना होगा कि अमुक मनुष्य चतुर था और योग साधना की वडी वडी वातें करता था। एक रोज देखा गया कि वही व्यक्ति पागल होकर घूम रहा है। और अड खड बोल रहा है। यह क्यो हुआ ? इसका कारण यही है कि उसे-योग सावना कराने वाला योग्य व्यक्ति नही मिला। योग्य गुरु के अभाव मे साधना भी

विकट हो जाती है। उसी तरह से प्राणायाम है। प्राणायाम भी एक योगिक साधना है। प्रायः नासिका से श्वास को अन्दर ले जाना और नियमानुसार उसको वापिस बाहर लाकर छोड देना। रेचक और पूरक दो क्रियाये होती हैं। कुम्भक क्रिया की दो अवस्थाये होती है वे इस प्रकार है:- एक बाह्य कुम्भक, और दूसरी आभ्यन्तर कुम्भक। बाहरी कुम्भक प्रक्रिया वह है जिसमे श्वास को बाहर छोडकर रोकना होता है और आभ्यन्तर कुम्भक वह है जिसमे स्वास को अन्दर रखकर रोकना होता है बाहरी प्रक्रिया तो इतनी खतरनाक नही होती है किन्तु अन्दर रखने की जो प्रक्रिया होती है उसका साधन अच्छी तरह न बनपाये तो उसकी साधना तो कही रह जाती है किन्तु वातवाहक उसको नाडियो मे वायु का प्रेसर इतना अधिक हो जाता है कि उसकी नाडिया फट सकती है मस्तिष्क की स्थिति डावाडोल हो जाती है। वह कभी कभी खतरे मे पड जाता है। मन की साधना के अनेक उपाय बताये जा सकते हैं। मन एक साथ काबू मे नही होता है। हो तो कैसे हो? उस पर चिन्तन किया जाय तो अनेक उपाय सामने आ सकते है। लेकिन यदि चाबी पकड ली जाय तो जल्दी हाथ मे लाया जा सकता है।

मन का बटन दबाइए

आपके हवा के लिये पखा चलता है। उस पखे की हवा लेते लेते अगर व्यक्ति घबरा जाय और वह स्वयम् पखे को बन्द करने मे अशक्त हो और किसी दूसरे व्यक्ति से कहता है, या नौकर से बोलता है, भाई, इस पखे की हवा मुझे नही चाहिए। यह बहुत गति से दौड रहा है इसको बन्द कर दो। जिसको कह दिया वह व्यक्ति कोई ग्रामीण है, उसने कभी कही हवेलियो मैं पखा लगाते नही देखा और पखा चलाते भी नही देखा अत उसको बन्द कैसे करना यह वह नही समझता है। ऐसे व्यक्ति को कहा जाय,

वह व्यक्ति उस पखे को वन्द करने के लिए अपना हाथ लम्बा करके उस पखे को पकडता है और यह सोचता है कि पखा पकड कर बन्द कर दू । क्या वह हाथ से चलते हुए पखे को पकड़ कर रोक सकता है ? नही, रोक सकता । वह यह सोचता है कि पखा हाथ से बन्द नही हो रहा है । रस्सी डाल कर पखे को खम्बे से बाध दू और इसको वन्द कर दू । यह सोच कर रस्सी डाल कर दोनो मु ह रस्सी के लेकर पखे को खम्बे से बाधना चाहता है । पखे को बाध सकता है ? रस्सी मजवूत है तो पखा टूट जाएगा और रस्सी कमजोर है तो रस्सी टूट जावेगी । वह इस तरह से भी पखा नही रोक सकता है । अगर जानकार व्यक्ति उस स्थल पर पहुच जाय और ग्रामीण व्यक्ति को हैरान होते देखे तो कहेगा, भाई, क्यो हैरान हो रहा है, वह ग्रामीण व्यक्ति कहेगा कि भाई साहब सेठ साहब की आज्ञा है पखा वन्द कर दो, हवा उनको नही चाहिए । लेकिन पखा बन्द नही हो रहा है । हाथ लम्बा करके पखे को रोक कर वन्द करना चाहा लेकिन वह नही हुआ और रस्सी डाल कर पखे को वन्द करना चाहा लेकिन वह भी नही हुआ । उस आगन्तुक ने कहा, 'रस्सी और हाथ से पखा वन्द थोडे ही होता है । देखो मे जरा सी देर मे वन्द कर देता हू । जरासी अगुली को आगे ले जाकर वह वटन को दवा देता है और पखा रुक जाता है, पखा वन्द हो जाता है । जिस तरह पखे को वन्द करने के लिए वटन है उसी प्रकार मन के पखे को, जो मनुष्य को जीवन मे चक्कर लगवा रहा है, इसको वन्द करने के लिये अलग अलग तरीके से उपाय कर रहे हैं, वे उपाय प्राय ग्रामीण मनुष्य की तरह कर रहे हैं । जिस प्रकार ग्रामीण मनुष्य हाथ से पखे को वन्द करना चाहता है । आज का मनुष्य भी इसी प्रकार मन को बाध कर वन्द करना चाहे तो मन कावू मे आने वाला नही है । ज्यादा जोर दिया तो पखे की पखुडियां टूटेंगी । इसका तात्पर्त यह

है कि मस्तिष्क की नाडिया टूटेगी या इन्द्रिया नष्ट हो जावेगी या कोई आघात लग जावेगा। सफलता नही मिलेगी।

आज के मानव की यही दशा है। वह इस मन रूपी पखे को ग्रामीण मनुष्य की तरह रोकने की कोशिश कर रहा है। वह इस मन रूपी पखे पर कन्ट्रोल करना चाहता है लेकिन जीवन कला रूपी इसकी चाबी को नही पकड पा रहा है। वह अगर इसके बटन को दबाने की कला समझ ले तो मन रूपी पखा स्थिर हो जाता। फिर उसके सामने कितने भी चचल पदार्थ आये, कितने भी दृश्य उसके सामने आये, उसके मन को चचल बनाने वाले ही स्वर्गीय दृश्य उपस्थित हो जाय फिर भी मन उसकी आज्ञा के बिना चचल नही होगा। इस कला को प्राप्त करना है और इस चचल मन को स्थिर करना है, तो इसके लिये दो प्रकार के मार्ग है। एक प्रारम्भिक मार्ग और दूसरा स्थायी मार्ग। प्रारम्भिक दृष्टि से जीवन के २४ घटे है। उसमे से आधे घटे निकालने चाहिए उसमें मन की गति-विधि को देखने की कोशिश करे। २४ घटे का सारा का सारा समय आज किस काम मे जा रहा है? मन की गतिविधि को देखने मे, या मन को स्थिर करने के प्रयास मे या लापरवाह बनकर जीवन को चचल बनाने मे जा रहा है? अगर आप अपने जीवन की दिनचर्या को देखेंगे तो, विदित होगा कि जीवन के चौबीसों घटे पदार्थों को बटोरने के लिये व्यतीत हो रहे हैं। मन को वश करने के लिये कुछ भी समय नही दिया जा रहा है। आत्मा के साथ न्याय-करना चाहते हैं तो १२ घटे आत्मा को दीजिये और १२ घटे शरीर को दीजिये। यदि आप आत्मा के साथ न्याय की स्थिति मे नही है। और शरीर के साथ ज्यादा न्याय करना चाहते हैं तो, चौथाई समय, ६ घटे इस उस विषय मे दीजिये। कदाचित् आपके मन की कमजोरिया अधिक हो तो ६ घटे नही तो तीन घटे दीजिये, तीन भी नही दे सकें तो दो दीजिये और दो भी नहीं दे सकें तो एक तो

कम से कम दीजिये। एक भी नही? एक घटा भर भी आपको इस ओर ध्यान देने का अवकाश नही। चौबीस घटे हाय-हाय करते-करते चले जा रहे हैं, चौबीस घटे मशीन की तरह दौड रहे हैं। और दौड कर भी प्राप्त क्या करने वाले हैं? क्या लेने वाले है? चौबीस घटे इन चन्द चाँदी के टुकडो को प्राप्त करने मे बिता देते हैं, सौ वर्ष या ८० वर्ष की जिन्दगी सारी की सारी इसमे लगा दी और कदाचिद् कुछ सम्पत्ति प्राप्त भी कर ली, कितनी? अरबो खरबो की प्राप्ति कर ली, उसके बाद भी आपका मन स्थिर हुआ क्या? अब तो अरब प्राप्त हो गये अब तो सतुष्ट है क्या? नही। सतुष्ट नही।

सच्चे व्यापारी बनिए

मन दौड रहा है। हमने अपने जीवन मे इतना पैसा इकट्ठा किया है, इस मन को पैसे की तरफ लगाया है कि पैसा मनुष्य के पास अरबो, खरबो हो गया है। परन्तु क्या यह आपका सारा पैसा स्थायी रूप से रहने वाला है। क्या यह आपके पास मे टिक कर रहने वाला है। अगर ऐसा नही है तो क्या अपनी शक्ति का अपव्यय नही कर रहे हैं? आप व्यापारी है। यहा पर बैठने वाले भी अधिकतर व्यापरी हैं। व्यापार कैसे होता है? उसमे आय-व्यय का ध्यान रखा जाता है और वह व्यापार आप करते है जिसमे व्यापारी को अधिक आय होती है और स्थायी वस्तु प्राप्त होती है। इस बात का ख्याल रखे और कार्य करे तो वह सच्चा व्यापारी है और जिसमे आय व्यय का हिसाब न रखा जावे, अन्धाधुन्ध चलता रहे, उसमे व्यय अधिक हो और आमदनी कुछ न हो तो क्या वह सच्चा व्यापारी है! आप सब चुप क्यो हो। आप कहते हैं, महाराज, हम सावधान है। लेकिन सावधान इस विषय मे कि जो नाशवान पदार्थ हैं जो पदार्थ स्थायी नही है उनके लिये शरीर लगा रहे हैं उसके

व्यापार मे शरीर लगा रहे, मन, वचन, काया उसमे लगी रहे, है २४ घटे उसी मे लगी रहे, आगे के लिये आप नही देख रहे हैं और जव कभी मृत्यु का दौर दौरा आया, उस समय विवश होकर, यह सव छोढकर आप चले जायेगे। तब आपके साथ कौन जायेगा, क्या स्थिति वनेगी इसका भी कभी आपने चिन्तन किया है ? आप अपने जीवन की समग्र शक्ति का अपव्यय कर रहे है, उसके मुनाफे की तरफ आपका ध्यान नही है। आध्यात्मिक जीवन की तरफ आपका ध्यान नही है। आप चतुर व्यापारी है पर इस व्यापार मे आय व्यय का हिसाव नही हे तो इस स्थिति से आपको कुछ ऊपर उठना हे उसके लिए कम से कम एक घन्टा मन की साधना मे लगाना हे। इससे आपका मन स्वाभाविक वन जायेगा और इन सारी प्रवृत्तियो से हटने लगेगा। एक इन्सान यदि अपने मन को स्थिर करके चलता है तो वह अपने इच्छित कार्य कर सकता है। यह इन्सान के हित मे है। यह एक अपूर्व लब्धि है। इसको इन्सान खो रहा है मैं इसके लिए टेम्प्रेरी उपाय आपको वता रहा हू। यह टेम्प्रेरी उपाय यह है कि घटे भर की साधना मे आप वैठें। यह चिन्तन करे कि यह जो मैंने २४ घटे विताए है, इन चौवीस घटो के अन्दर मैंने क्या-क्या किया है। इस वीच मे कितने कार्य तो नैतिकता के हुए हैं ? और कितने अनैतिकता के हुए है ? यह देख लीजिए कि मैंने कितनी गल्तियां की हैं ? और ये गल्तिया हुई है ? तो लाचारीवश हुई है या अज्ञान से हुई है। लाचारीवश हुई है तो उसका प्रायश्चित रख दीजिए जिसमे मन पर उसका असर हो, और मन यह अनुभव करे कि ऐसी गलती करूँगा, तो मुझे यह दण्ड मिलेगा और इससे आपकी यह गलती छूट जायेगी और भविष्य मे ऐसा ध्यान रख कर ही कार्य किया जायेगा। आपका मन भी सोचेगा। इस प्रकार की भावना रख कर कुछ क्षण तक अपने पूर्व जीवन के २४ घण्टो का चिन्तन करे और फिर थोडा-

सा भावी जीवन के २४ घण्टो का नक्शा खीचें, यह नक्शा सामने रखे कि भविष्य के इन २४ घण्टो मे वह इस प्रकार की गलती नही करेगा। तो यह मन की एक प्रारभिक साधना है। इसके पश्चात् कुछ मिनिट के लिये हाथ की अनुपूर्वी का अभ्यास किया जाए जब कुछ समय तक यही अनुपूर्वी चलेगी तो मन को आप एकाग्र कर सकेंगे। इससे आगे के अवशेष समय मे आप स्वाध्याय करिये। स्वाध्याय कैसे हो ? शास्त्रो को प्रमाण स्वरूप समझिये और उस पर मन को स्थिर करने का प्रयत्न कीजिये। परन्तु आज हो क्या रहा है ? इसके लिए आपके पास समय नही है किन्तु यदि कोई लडाई झगडे की वात अखबार मे आ गई या अड बड बात आ गई, तो आप उस अखवार को पढेंगे, और दूसरी वातो मे समय को गवा देंगे,लेकिन शास्त्रो के स्वाध्याय के लिए उनको आधा घटा भी नही मिलता है और कदाचित मैं यहा पर इस आधे घण्टे के लिए मागनी कर दू। यहा वैठने वाले मेरे भाई एक घटा भर का स्वाध्याय का नियम ले और एक घटा नियमित स्वाध्याय करे ऐसी मागनी मैं कर दू ? क्या मागनी नही करू। वस कहते जाइये। स्वाध्याय की फुरसत नही है। उपन्यास पढ लेंगे परन्तु शास्त्रो का स्वाध्याय नही होगा। इस प्रकार मन से हैरान होकर इस मन को कैसे पकड़ पायेंगे। जव मन मे कोई चीज वैठ जाती है तो मन उसके लिए हठोला हो जाता है। इसी प्रकार शास्त्रो के स्वाध्याय की वात, इसके व्यापार की वात एक घटे भर के लिये, आधे घटे के लिए या कम से कम १५ मिनिट के लिये ही कर लीजिये। अगर इतना स्वाध्याय नियमित रूप से चलता है तो मन को एक जगह पर टिकाने का एक साधन मिल जायेगा। अव स्वाध्याय किसका करना है, इसके करने का तरीका क्या है ? शास्त्रो का स्वाध्याय कैसे हो ? आदि वातो को समझाने के पूर्व मे आपके मन को एकाग्र करने के लिये प्रारभिक भूमिका वता रहा हूं। आप पुस्तक पढने के लिए पढो

क्या सोचते हैं ? वर्ण माला ? वर्णमाला को नही समझे और दसवी कक्षा का पाठ आपको पढने के लिये दे दे, एम० ए० का पाठ दे दे, जब ए० बी० सी० डी० का ज्ञान नही है तो क्या आप उसको समझ लेगे ? इसी दृष्टिकोण से स्वाध्याय का भी तरीका है। यह तरीका है कि चाहे जैसी पुस्तक हो, पर हो धर्म शास्त्र की, चाहे वह शास्त्रो का अनुभव हो, उस धर्म पुस्तक के स्वाध्याय के लिये आप उसका एक पेज ले लीजिये और उस पेज का भी एक पैराग्राफ लीजिये। प्रारभिक रूप से उस पैराग्राफ को आप पढिये और उस पैराग्राफ को पढने के बाद अपने मु ह से अपने कानो को ही वह सुना दे। दूसरा सुनने वाला हो तो ठीक है वरना अपने कान तो सुनने वाले है ही। कानो को सुनाकर आगे को बढे। इस प्रण के साथ आप इसको पढिये कि मुझे इसको पुन सुनाना है तो आपका मन एकाग्र हो जायेगा, मन उसमे दत्तचित्त होकर एकाग्रता से उसको पढेगा। फिर दूसरे पैराग्राफ को लीजिये। उसके बाद दूसरे पृष्ठ को लीजिये और धीरे धीरे दो पृष्ठो तक बढिये। इसमे सबसे पहिला लाभ होगा कि जितने समय तक पढेगे आपका मन एकाग्र हो जायेगा। दूसरा लाभ यह होगा कि आपकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जायेगी, कई व्यक्तियो को यह शिकायत होती है कि थोडी सी बात देखते ही वे भूल जाते है। हमारी स्मृति नही है क्या करे ? मैं पूछता हू आज व्याख्यान मे क्या सुना। कहते है, सुना तो था, याद नही है। उनकी स्मृति कहा गायब हो गई। मन डोलायमान हो रहा था। एकाग्रता मे स्मृति तीव्र हो जाती है और स्मृति से विषय का ज्ञान कर पायेगे। तीसरा लाभ यह होगा कि आपको वक्तृत्व शक्ति आयेगी। आपको बोलने की कला आयेगी। चौथा लाभ यह होगा कि पुस्तक मे क्या रहस्य है ? उसका क्या विषय है, उस विषय की बारीकी को आप पढ पायेगे और वह आपके जीवन मे हित साधक है या नही ? इसका मनन कर पायेगे। इस तरीके से लाभ की स्थिति चली तो आपकी

सामायिक का जो समय है वह सहज ही निकल जायेगा। सामायिक कर तो लें परन्तु घण्टे भर तक मन नही लगता है। यह प्रश्न हमारे सामने आता है। परन्तु इसमे इस तरह से मन को एकाग्र करके, इस तरह का एक प्रोग्राम वना कर मन को साधने की दृष्टि से चलें तो मन को एकाग्र करने का यह एक प्रारभिक साधन हो सकता है। मन को साथ लिया तो शरीर की स्थिति ठीक वन जायेगी। उसके वाद स्थायी रूप से मन को केन्द्रित करना है, अभी आपको विजली के वटन की वात कही थी। जो विजली के वटन का ज्ञान रखता है उसको यह भी मालूम रहता है कि कहा से शक्ति आ रही है और कहा पर शक्ति केन्द्र है। वह उससे सम्वन्धित सव चीजो का ज्ञान रखता है। वैसे ही शरीर के अन्दर रहने वाले जो तत्व है, यह शरीर ही जीवन नही है, मैं यहा पर मूल स्थिति को समझा रहा हू। इसके साथ-साथ आप मन को और उसके साथ-साथ शरीर को समझेगे, तो शरीर से सम्वन्धित इन्द्रियो का ज्ञान भी कर सकेंगे। इन्द्रिय और मन से शरीर का ज्ञान होगा, उससे आत्मा का ज्ञान करेंगे और आत्मा के ज्ञान से निर्णायक शक्ति को पहचान पायेंगे। इसी दृष्टि से मैं जीवन की परिभाषा की व्याख्या करना चाहता हू—वह है सम्यक् निर्णायकम् समता मय च यत् तत् जीवनम्। क्या प्रश्न चल रहा है? जीवन क्या है? समयक् निर्णायकम्— निर्णायक शक्ति जिसमें होती है उसको पहिचान सकेंगे। कल मैने इसका थोडा रूपक रखा था। इन्सान निर्णायक शक्ति का विवेचन नही कर पा रहा है। निर्णायक शक्ति के रूप मे स्थायी तत्व आत्मा को माना जाता है। क्योकि आत्मा ज्ञानवान है निर्णायक है यदि आत्मा को ज्ञान शून्य माना जाय तो उसका अस्तित्व ही मिट जायेगा, जिसमे ज्ञान नही है वह आत्मा नहीं है भले ही उनको आत्मा की सज्ञा दे दी गई हो। ज्ञान के विना आत्मा नही हो सकती है और विना ज्ञान के निर्णायक शक्ति नही आती है।

ज्ञान के बिना आत्मा का स्वरूप मिट जायेगा और उसे जड तत्व समझ लिया जायेगा। यह पाटा है। यह ज्ञानवान है ? या अज्ञानवान आप इसका ध्यान करिये। यह जड है इसमें ज्ञान नही। इसके अन्दर किसी तरह की चिन्तन शक्ति नही है। यह कुछ भी नही कर सकता है। चाहे आप इसको चोट मारो यह उसका निर्णय नही कर सकता है। यह भी नही समझता है कि ऊपर कौन बैठा है लेकिन जो ज्ञानवान, आत्मा है वह इसका निर्णय कर पाती है क्योकि निर्णय उससे किया जाता है—इसको सस्कृत की दृष्टि से कहा है—"निर्णीयते अनेन", जिससे निर्णय किया जाये, निर्णीयते यस्मात्—जिसमें से निर्णय किया जाये और निर्णीयते यस्मिन्– जिसमे निर्णय किया जाये। ये सभो अवस्थाए आत्मा की ही है अत उसमे निर्णायक या ज्ञान शक्ति को मानना होगा, निर्णय की शक्ति ज्ञान के साथ है, ज्ञान से चिन्तन मिलेगा उससे चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट होगा। कुछ दार्शनिक ऐसा बोल देते है कि आत्मा मे ज्ञान होता है लेकिन जब आत्मा परमात्मा रूप बनती है तब ज्ञान नष्ट हो जाता है।

यह भी एक हास्यास्पद बात है, इसमे गहरी दार्शनिक चर्चा है मैं उसे अभी नहो ले रहा हू, मूल मे मैं आपको निर्णायक की बात समझा रहा था कि मूल रूप मे जो गुण जिसमे नही है, अर्थात् अनिना भाव सम्वन्ध से जिसमे ज्ञान नही है, वह ज्ञान उसमे कैसे रहेगा और मोक्ष अवस्था मे सर्वथा नष्ट हो जावेगा। यह कैसी विशेपता है ? विशेषण लगाइये, यह असस्कारित जीवन है। ऐसा व्यक्ति निर्णायक स्यिति नही समझ पाता और उसको जीवन का स्वरूप समझ नही आता और हर समय धोके की धडी मे रहता है। जड तत्व को वेचने पर कुछ पैसा वटता है लेकिन मनुष्य जीवन इस स्थिति मे है कि यदि उसने निर्णायक स्थिति का पता नही लगाया और केवल मुर्दा अवस्था मे ही रह गया तो उसके शरीर की एक दमडी भी नही

वटेगी और श्मशान मे लेजाकर उसको जलाना होगा। यदि मन को केन्द्रित करे और चावी पकडना चाहे जीवन की, तो निर्णायक स्थिति की, शक्ति को निखालस रूप से समझने का प्रयास करें और यह समझने का प्रयास थोडे रूप मे होता है तो भी हो जाता है और एक दिन मन की केन्द्रित अवस्था आ जाती है। यह स्थिति नही आती है तो मन डावाडोल हो जाता है।

सच्चा साधक

निर्णय के अभाव मे व्यक्ति कभी कभी समस्या मे उलझ जाता है। इसके विषय मे कल आपके सामने मैं एक रूपक रख रहा था। आपको ध्यान होगा। एक तरुण की वात आरही थी। गोविन्द नाम का तरुण भयावह स्थिति के वीच मे वठा हुआ है। किसके साथ ? अपनी धर्म पत्नी के साथ, धर्म सहायिका के साथ। वह पत्नी धर्म के अन्दर मददगार थी, वह पति को विषयो मे डुवोने वाली पत्नी नही थी। उस गोविन्द के मन मे पत्नी की वात सुन सुन कर उल्लास पैदा हो रहा है और एक तरफ मन मे ग्लानि का अनुभव भी हो रहा है। उसने जव पूछा कि तुमने उस साधु के सामने क्या सकेत दिया, तुम्हारा एक गया आदि। तो उसकी पत्नी ने कहा नाथ, उस व्यक्ति ने अपने शरीर के अन्दर भस्मी रमा रखी थी, चर्म उसके पास था, कमण्डलु था और वह साधु अवस्था की दृष्टि से चल रहा था। मैने जिस साधु जीवन के स्वरूप को समझा वह उसमे थोडा कमजोर था क्योकि ससार के नाशवान पदार्थो से ऊपर उठता है, उसकी भावना आध्यात्मिक जीवन की ओर होती है, उसके सामने कैसा भी प्रदर्शन क्यो न हो लेकिन वह अपने मन को उस तरफ चचल नही करता है। जिस प्रकार ऊपर का वेश है वैसा ही अन्दर का जीवन रख कर चलता है। दोनो ही स्थितिया एक सी होती हैं। दोनो पहलू उसके सुरक्षित रहते हैं तो उसका साधु जीवन सुरक्षित

रहता है लेकिन अगर एक चीज गायब हो गयी तो उसका साधु जीवन अधूरा हो गया। उसने चाहे जैसा वेश लिया हो, लेकिन मैं अपनी दृष्टि से सोच रही थी, चिन्तन कर रही थी कि साधु ससार के सारे पदार्थों से विरक्त होता है। और जब भिक्षा की दृष्टि से घर मे प्रवेश करता है तो उसकी दृष्टि चचल नही होती है। गृहस्थ के घर मे कौन सा सामान है, क्या वस्तुये कहा पडी है, भाइयो बहिनो के पहिनने के कौन से वस्त्र है, निपटने का स्थान कहा है? आदि इन सब बातो की ओर साधु का विशेष ध्यान नही रहता है, उसका ध्यान किधर रहता है? उसका ध्यान इस ओर रहता है कि जब वह भिक्षा के लिये चले तो नीची निगाह रख कर चले, गृहस्थ के घर में प्रवेश करता है और जहां उसकी रसोई है वहा वह प्रवेश करता है तो यह देखता है कि सूजती रसोई है या नही, छोटी मोटी चीजों को उठाकर इधर उधर तो नही किया जा रहा है, कही बटन दबाकर प्रकाश करके भोजन तो नही दिया जा रहा है, हरी को छू कर तो भोजन नही दिया जा रहा है, उस ओर साधु का ध्यान रहता है तो वह साधु बाह्य और आन्तरिक स्थिति को ठीक लेकर चलता है। मैंने सुना है आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब फरमाया करते थे।

"ईर्या भाषा एषणा ओलखजो आचार,
गुणवन्त साधु ने देखने बन्द जो बारंबार।

साधु मे ईर्य्या समिति कैसी हो, भाषा क्या बोल रहा है, ऊटपटाग भाषा बोल रहा है या हितकारी भाषा बोल रहा है, गवेषणा यानी गोचरी की उसकी स्थिति कैसी है, कैसी गवेषणा कर है इससे उसके बाह्य और आन्तरिक जीवन की पहिचान हो सकती है। आचार्य श्रीजी महाराज साहब ने फरमाया था। उसी को शास्त्रीय प्रमाण से मैं आपके सामने रख रहा हूँ कि साधु जीवन की आन्तरिक और बाह्य स्थिति सुरक्षित रहती है तो उसका जीवन

ठीक तरह से चलता है। गोविन्द ने कहा प्रिये, उसने क्या कहा ? भिक्षा लेकर चला गया तो उसने अन्दर की चीजे देखी नही, बाहरी दृष्टि मे हवेली देखने लग गया तो उसको क्या सार्टीफिकेट दे दिया कि एक गया। उसने कहा नाथ ! बाहरी हवेली की भी रौनक है और साधु बन जाने के बाद स्वाभाविक दृष्टि पड गयी तो ठीक है लेकिन घूर-घूर कर अनिमेष दृष्टि से खडा रह कर देखना यह उसके मन की चचलता प्रकट करता है और आन्तरिक जीवन का इससे साधुपन चला जाता है। मैंने कहा अन्तर और बाहर का साधुपन। बाहर का साधुपन जैसा वेश मे लगता है वैसा है पर एक अन्दर का गया। मैंने तो उसको सावधानी दिलायी। मेरी कोई बुरी भावना नही थी। गोविन्द सुनकर चकित हो गया। आश्चर्य करने लगा। यह अलौकिक बात प्रथम बार सुन रहा हू। मैं क्या कहू। मेरी धर्म पत्नी कहू या ज्ञान की दृष्टि से उसे उच्च स्थान पर बैठाऊँ। यह अत्यन्त जिज्ञासा रख कर आगे का प्रश्न करता है।" उसको कह दिया तुम्हारा एक गया, वह तो समझ मे आ गया। उसने सकेत किया, तुम्हारे दोनो गये। तू क्या समझी ? "प्राणनाथ ? वह थोडा चचल जरूर था। पर उसकी बुद्धि ने मेरे अभिप्राय को समझ लिया। उसने स त दिया। मनुष्य जीवन मिला है, उसके साथ-साथ पूर्व जन्म की पुण्याई से सारे साधन उपलब्ध है। करोड-पति का घर है, खाने पीने पहिनने की वस्तुओ की कमी नही है, यह सब होने के बावजूद भी यदि तू अपने सासुजी के अभिप्राय के अनुसार कजूस बनी रही और दान पुण्य नही किया तो जीवन खोखला रह जावेगा। आन्तरिक और बाह्य दोनो जीवन चले जावेंगे। न तो ऊपर से स्वच्छ वृत्ति की स्थिति और न अन्दर की स्थिति से वैराग्य भावना। पहला अर्थ तो यह लिया। दूसरा अर्थ यह समझा कि मुझे इन नाथ ने यह सकेत दिया कि जीवन मे तीन

गुण होते है। सत्वोगुण, रजोगुण और तमोगुण।' सत्व और रजोगुण उसमे से चला गया। जो गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी इतना ख्याल रहता है कि साधु ऊट पटाग बातो मे न लगे और वैराग्य भावना लेकर चले और अन्तर और बाह्य मे ठीक रहे। साधु की भी मगलमय कामना नही करता वह रजोगुण और तमोगुण मे रहता है। उसने सकेत किया रजोगुण और तमोगुण दोनो चले गये इसलिये दो चले गये। मैंने उत्तर दिया कि तुम्हारे तीनो जाय। गोविन्द कहने लगा कि इसका मतलब क्या है कि तुम्हारे तीनो जाय। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनो मनुष्य मे रहते है। रजोगुण रहता है, राजसी प्रवृत्ति रहती है और राजनैतिक दृष्टि से भाग लेता है और मन को उस ओर दौडाता है और रजोगुण मे प्रवृत्त रहता है तो दुर्व्यसन उसमे लगे रहते है। सतोगुण रहता है तो धार्मिक जीवन बिताता है और समता के साथ रहता है। इसान को तीनो गुणो से भी परे होना चाहिये। जैसा कि गीता मे कहा है

त्रिगुणातीतो भवार्जुन ?

तीनो गुणो को नष्ट करके सनातन भाव मे चले जाओ।

असत्य को झुकना पड़ा

तीनो साकेतिक शब्दो का अर्थ जब गोविन्द ने सुना तो उसका दिल दहल गया। वह सोचने लगा कि बडे बडे महात्माओ के पास भी इस प्रकार की गूढ बाते नही मिलती। अपनी धर्म पत्नी को क्या उपमा दू, किस प्रकार इसका सत्कार करू। विना निर्णय के कोई कार्य होता है तो गलत होता है। माता पिता की आज्ञा से मै यहा इसको लेकर आया और अगर इसको कुए मे धक्का दे देता तो मैं इस वहुमूल्य रत्न को खो देता। मेरी क्या स्थिति होती ? इस प्रकार उसके मन मे ग्लानि होने लगी और उसका चेहरा मलीन होने लगा। पत्नी कहती है प्राणनाथ ! "मैंने आपको सही वात सुनायी और

सत्य सत्य वात कही उससे आपको प्रसन्न होना चाहिये, फिर चहरे पर मलीनता किस प्रकार की ?" उसने कहा, प्रिये, "तुम्हारी बातो से म बहुत प्रभावित हू, तुम जैसी सत्य निष्ठावान पत्नी मिली और धर्म मे भी आगे बढ रही है। इससे मुझे बडी प्रसन्नता है। यदि मुझे विषय लोलुप और ससार मे फँसाने वाली पत्नी मिल जाती तो मेरे जीवन को वासनाओ मे डाल कर नष्ट कर देती। किन्तु मुझे तुम्हारी जैसी पत्नी मिली है जो जीवन को उच्च शिखर पर पहुचाने की कोशिश करती है। ऐसी पत्नी को खत्म करने के लिये पिता की आज्ञा लेकर चला उसका पश्चाताप और ग्लानि हो रही है।" पत्नी कहने लगी वस्तु स्थिति को आपने सुन लिया लेकिन "मातेश्वरी और पिताजी ने जो आदेश दिया है, अब आप उनकी आज्ञा का पालन करिये।"

मेरे मोह मे मत फसिये। यदि उन्होने आपको कुए मे धकेलने की आज्ञा दी है तो आप कृपा पूर्वक मुझे कुए मे धकेलिए और परमात्मा के साथ एकाकार होने मे मुझे सहयोग दीजिये। मैं उस समय भी परमात्मा मे ध्यान रखूँगी और सोचूँगी कि मेरे जीवन मे यह निर्णायक क्षण अपने सत्यस्वरूप को समझाने के लिये ही आया है। यह सुनकर गोविन्द अत्यन्त ही दु खित हो गया। हा ! हा ! अरे अरे मैं कैसी पत्नी को कुए मे धकेलने को जा रहा हू। देवी, क्या तू आज मुझे अकेले को छोडकर स्वर्गीय आनन्द को लूटने जाना चाह रही है। कुए मे तुझे नही गिरना है, मुझे गिरना है। क्योकि माता पिता के पास चला गया तो वे दूसरी स्त्री के साथ मेरी शादी कर देगे और फिर मेरा जीवन अन्धकार के कुए मे गिर जायेगा। तुम्हारी जैसी धर्म प्रिया के बिना जीवन अन्धकारमय हो जायेगा। अब हम दोनो मिलकर प्रेम से धार्मिक महोत्सव करें और घर घर धर्म को फैलावें। दोनो इस प्रकार का विचार कर अपने घर की ओर चले। माता-

पिता देख रहे थे कि उनका पुत्र अपनी स्त्री के साथ वापिस आ रहा है। उनकी दूर से ही दृष्टि पड़ी कि पुत्रवधू को साथ लेकर वह आ रहा है। दोनो ने माता के पैर छूए। नसस्कार किया तो माता ने भी मुँह मोडकर आशीर्वाद नही दिया। पिता ने भी मुँह फेर लिया। गोविन्द ने कहा, पिताजी आप क्यो नाराज हो रहे है ? क्या करू मैंने आपकी आज्ञा का पालन नही किया है । आप मेरी बात को सुनिये। पहले किसी भी बात का तथ्य निकालिये, फिर उस पर निर्णय कीजिये। सहसा विदधीत न क्रिया। जल्दी मे कोई कार्य नही किया जाना चाहिये । मैं इसको कुए मे गिराने के लिये तैयार था और आपकी यह पुत्रवधू भी इसके लिये तैयार थी और इसने कोई विरोध भी नही किया। किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हू कि आपने जो यह निर्णय किया है यह क्यो किया ? ये जो तीन बाते थी इन तीन बातो का अर्थ समझे बिना, उस पर विचार किये बिना आपने आज्ञा दे दी और मैं भी उसके लिये तत्पर हो गया। वहा पर मैंने इससे उसका अर्थ पूछा। इस प्रकार गोविन्द ने उन सारी बातो को माता-पिता के सामने रखा और उसको सुनकर माता पिता अत्यन्त ही दुखी हुए । उनकी आखो मे आसू भर आये और अपनी पुत्रवधू के चरणो पर गिर कर कहने लगे हे देवी, तुम्हारा जीवन धन्य है। छोटी अवस्था के अन्दर भी तुमने सत्यनिष्ठा का परिचय दिया है, धर्म भावना का परिचय दिया है, वह हम नही भूल सकते हैं। यह सारा घर, यह सारी सम्पदा अब तुम्हारे चरणो मे है। इस प्रकार एक शान्ति का वातावरण, प्रेम का साम्राज्य, धार्मिक भावना का साम्राज्य उस परिवार मे आया और वह परिवार एक आदर्श परिवार बन गया । ऐसी भावना आप अपने परिवार के अन्दर रखने को तैयार है तो आप आज आतमा के स्वरूप को समझने

के साथ साथ जीवन क्या है ? उसकी परिभाषा चल रही है। उसको आप अपने मन मे स्थायी रूप से विठाइये तो आपकी हैरानी समाप्त हो जायेंगी और हैरानी समाप्त होने के साथ साथ धर्म ध्या की जागृति करते रहेगे तो आपका जीवन भी ऐसे मगलमय प्रसग के साथ भगवान श्रेयास की प्रार्थना के अनुरूप वन सकेगा।

लाल भवन

२७ जुलाई ७२





सोच समझ कर काम करने से मनुष्य अनेक सकटो से वच जाता है। अयत्न पूर्वक किया गया काम चाहे वह धर्म का ही क्यो न हो, उसमे अनिष्ट की सम्भावना रहती ही है। इसीलिए बुद्धिमानो ने कहा है कि - पहिले सोचो, समझो, फिर करो।

—जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

× × × ×

पूरे निर्णय के साथ किया गया काय ही हितावह होता है।

—महात्मा गाधी



अलमप्पणो होंति अलं परेसिं

—सूत्रकृताग १२।१६

ज्ञानी आत्मा ही स्व और पर के कल्याण मे समर्थ होता है ।

---

९ | परम-आश्रय

प्रणमु वासुमपूज्य जिननायक सदा सहायक तू मेरो,
विषम वाट घाट भयथानक परमाश्रय शरणो तेरो ॥

यह प्रभु वासपूज्य भगवान की प्रार्थना है। नामो की स्थितियो
ˆ साथ कविता की स्थिति भी परिवर्तित हो रही है और भावो का
ıकलन भी विभिन्न प्रकारो से आ रहा है। वासपूज्य भगवान के
ारणो मे जो कुछ भी प्रार्थना का प्रसग आया है, इस प्रार्थना मे
ल की प्रार्थना से आज कुछ अन्तर है। कल की प्रार्थना मे चेतन को
म्बोधन करके सावधानी दिलाई थी कि तू [अपने वर्तमान जीवन
ो कल्याण के मार्ग पर लगा दे, जब कि आज की प्रार्थना मे
ासपूज्य भगवान को सहायक के रूप मे पुकारा जा रहा है, और
ाह भी सहायता कहाँ ? तो उसका सकेत दिया है, "विषम वाट-
ााट" विषम-भयकर रास्ता है, पहाड आदि भयकर जगली स्थान है।

जहाँ पर चोर डकैतो का भय है, आदि बातो को लेकर भयानक अवस्थाओ का वर्णन किया गया है, और सब अवस्थाओ मे यह अभियाचित किया गया है कि यदि आपकी कृपा रहे तो सब स्थानो पर मैं कुशलतापूर्वक गमन कर सकता हू, अपनी स्थितियो को सुरक्षित रख सकता हू। प्रार्थना करना प्रार्थना की दृष्टि से उपयुक्त है, लेकिन प्रार्थना के अन्दर आये भावो को तात्त्विक दृष्टि से जीवन के साथ सम्बन्धित करना, सिद्धान्त की सुरक्षा भी रहे और जीवन के क्षेत्र मे भी प्रगति हो यह विशेष महत्व की बात है। इस प्रार्थना मे सहसा यह समझाया गया है कि कितना भी भयावह स्थान हो और कैसी भी विकट स्थिति हो, लेकिन वहाँ पर भगवान को सहायक मान लेने से सब दुविधाये टल जाती है, और यह जीवन निर्बाध होकर आगे बढ जाता है।

बात तो एक दृष्टि से उपयुक्त लगती है, लेकिन दार्शनिक दृष्टि से तर्कप्रधान व्यक्ति की निगाह मे इस प्रार्थना मे भी कई प्रश्न खडे हो जाते है। विचारक व्यक्ति इधर शास्त्र का श्रवण करता है, उस शास्त्र के श्रवण से यह उसको अवगत होता है, शास्त्र के मर्म की स्थिति का बोध होता है, तो वह यह सोचता है कि सिद्धान्त की दृष्टि से भगवान तटस्थ है, दृष्टा हैं। वे सासारिक कार्यो मे या ऐसे प्रसगो के ऊपर कभी उपस्थित नही होते। वे अपने स्वरूप मे तल्लीन है। जब भगवान अपने स्वरूप रमण मे अपनी अवस्था को रख रहे हैं तो प्रार्थना के प्रसग मे यह प्रार्थना करे कि भगवान आपकी सहायता से हमारी ये सब बाते हट जायगी यह कैसे सभावित हो सकता है? इसमे अपेक्षा दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है। यद्यपि भगवान अपने स्वरूप मे सदा के लिए विद्यमान हैं और वहा से जरा भी विचलित नही होते और न कभी इस भू-मण्डल के ऊपर आकर किसी के सहायक के रूप मे उपस्थित होते हैं जैसा कि आज

का सिपाही किंवा पुलिस दु खनिवारण की दृष्टि से मनुष्य के लिए सहायक बनती है या ऐसी कोई आततताई की स्थिति बन जाती है तो उसमे उसका सहारा लिया जाता है, उस तरह का सहारा तो भगवान से मिलने वाला नही है। लेकिन भगवान का सहारा भगवान के मार्ग से जो हमे मिलता है उस सहारे से ही यह आत्मा अपने गन्तव्य स्थान पर निर्विघ्नता के साथ पहुच जाती है। इस दृष्टि से भगवान को सहायक के रूप मे माना जाय, भगवान चाहे पहुचे या न पहुचे लेकिन भगवान का मार्ग सर्वत्र विद्यमान है। जहा कही भी आप अवलोकन करना चाहे। उस मार्ग को ध्यान मे रखकर उस मार्ग के सहारे यदि चले तो वह भगवान का ही सहारा है। यदि हम उनके बताये हुए मार्ग के सहारे चल रहे है तो भगवान के सहारे ही चल रहे है, और यदि मार्ग से भटककर अर्थात बताये हुए उस रास्ते से हटकर एकान्त गुफा मे भी जाकर बैठ जाते है और यदि वहा पर रट लगाते है कि भगवान आप मेरे सहायक बनो, मैं आपका जप कर रहा हू आपकी पूजा कर रहा हू आपके लिए तप कर रहा हूँ अत आप महरबानी करके इस गुफा के अन्दर मेरी सहायता करो। इस भावना से यदि वह बैठा रहे और एक जिन्दगी नही अनेक जिन्दगिया बिता दे, लेकिन फिर भी भगवान की सहायता नही मिल सकती, क्योकि भगवान की सहायता अविधि से नही मिलती है, विधि से मिलती है। भगवान का मार्ग ऐसा है जो कि राजमार्ग है। उस राजमार्ग पर जो भी पहुच जाता है उसको वहा पर भगवान की सहायता स्वत. प्राप्त हो जाती है। एक मनुष्य कमरे मे प्रवेश करे और उस कमरे के दरवाजे को वन्द करके अन्दर से कूठा (सकल) लगा दे और अपनी आखो पर पट्टी वान्ध ले, फिर वहा वैठकर सूर्य से प्रार्थना करे कि सूर्यनारायण तू आ और मुझे प्रकाश दे, मैं अन्धकार मे बैठा हुआ हू। तू आ। मेरे नेत्रो को खोल

और अपना प्रकाश यहा विस्तार रूप मे फैला दे। इस प्रकार वह व्यक्ति उस कमरे मे बैठकर सूर्य की प्रार्थना करे तो क्या सूर्य वहा कमरे मे जाकर प्रकाश देगा? एक दिन की प्रार्थना से नही, दो दिन की प्रार्थना, दो दिन की ही नही तो १० महीनो तक भी वह प्रार्थना करे सारी जिन्दगी भर करे और कल्पना कर लीजिये कि ऐसी अनेक जिन्दगिया प्रार्थना करता रहे लेकिन फिर भी सूर्य उस कमरे मे जाकर प्रकाश देने वाला नही है। यदि उसको प्रकाश लेना है तो उसका यही कहा जाय कि जो तेरी आखो पर पट्टी बन्धी हुई है उस पट्टी को स्वय तू खोल और दरवाजा खोलकर बाहर आ। यदि वह सूर्य के मार्ग पर आगया तो सूर्य का प्रकाश बिना प्रार्थना के ही उसे मिल जायगा। सूर्य की साधना करने की भी जरूरत नही है, लेकिन उसके मार्ग पर आने की आवश्यकता है। वह व्यक्ति अपने आख की पट्टी खोलकर दरवाजे के बाहर आयेगा और उसके मार्ग पर आ गया तो सूर्य की सहायता स्वत उसको उपलब्ध हो जाती है। ठीक वैसे ही इस आत्मा को भगवान की सहायता के लिए प्रार्थना करने से पूर्व अपने नेत्रो की पट्टी को दूर करना है और हृदय के दरवाजो को खोलकर वीतराग देव का जो मार्ग है उस मार्ग को भलीभाति समझना है। यदि समझकर उस पर गमन करे तो प्रभु की सहायता स्वत ही उसको मिल सकती है, परमात्मा को यहां आने की आवश्यकता ही नही रहती। सूर्य के प्रकाश मे आकर के वह सूर्य का प्रकाश ले लेता है, तो सूर्य को उसके पास आने की जरूरत नहीं है। वैसे ही वासपूज्य भगवान की प्रार्थना आप उस तात्त्विक दृष्टि से करे, तो उनके मार्ग के अनुसार चले तो उनकी सहायता की स्थिति आपके हाथ मे आ जाती है।

भिखारी मत बनो

लेकिन फिर भी कुछ भाइयो के मन मे यह प्रश्न तो अवश्य

रहता है कि जो भगवान के उक्त मार्ग पर चलने वाला मनुष्य है वह कभी भी माँगणी नही करता है और शास्त्रीय दृष्टि से भी हम सुनते है "नो इह लोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा" इस लोक की कामना के लिए हम तप न करे। "नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।" परलोक की कामना के लिए तप मत करो, आदि तो इन शास्त्रीय बातो मे इस लोक सम्बन्धी सारी परिस्थितियाँ आ गई। चोर डकैत यह सब के सब इस लोक मे भय उत्पन्न करते है और इन्ही उपद्रवो से वचने के लिए वासुपूज्य भगवान की प्रार्थना कवि ने की है। इसमे तो कामना कर ली गई और इस कामना के साथ चलेगे तो (निदान) तो नही हो जायगा ? यदि निदान की (स्थिति आ गई तो भगवान का मार्ग कहा रहेगा। इस प्रश्न मे भी तथ्य अवश्य है लेकिन तथ्य की स्थिति को आप यदि ठीक तरह समझे तो उसका भी समाधान हो जाता है। कामना की दृष्टि से अगर वह भगवान को याद कर रहा है और निदान की स्थिति मे सोच रहा है तो वह गलत राह पर है, वह भगवान के मार्ग पर नही है, लेकिन एक शुद्ध सम्यक् दृष्टि के नाते अपने जीवन के क्षेत्र को लेकर चल रहा है, और उसको यह ख्याल है कि मुझे प्रभु के अतिरिक्त और किसी को याद नही करना है। इस प्रकार हर क्षेत्र मे प्रभु को ही याद करे और इससे भिन्न तत्वो की तरफ उसका किंचित भी ध्यान न रहे इस भावना को रखकर कि वह इसमे इस लोक की मागणी नही कर रहा है तो उसका दृढ विश्वास उसको आगे बढाता जाता है, लेकिन ऐसी स्थिति सव मनुष्यो की नही बनती है। सव मनुष्य एक तरह के नही होते है, सव का मनोबल प्रवल नही बनता है और जिनका मन निर्वल है वे व्यक्ति यदि कदाचित् ऐसे प्रसंग मे सहायता भी चाहे तो भगवान की सहायता की ही कामना व्यक्त करें, लेकिन उसके अतिरिक्त किसी की सहायता की वात व्यक्त न करे।

स्वर्गीय आचार्य श्री का कथन था कि पुत्र अपने घर पर पहुंचता है और यह चाहता है कि मुझे भोजन मिले। उसकी अभिलाषा के अनुसार घर मे पुत्र की माता स्वत. उसको भोजन परोस देती है, लेकिन कदाचित् माता किसी कार्य मे लगी हुई है, भोजन नही परोस सकती है और मागने की आवश्यकता है तो वह माता से ही मागे न कि वह अन्य से जाकर मागे। इसमे आचार्यश्री का कथन था कि किसी अयोग्य मे जाकर नही मागा जाय। हालाकि माता विना मागे ही परोस देती है, लेकिन फिर भी न रहा जाय तो उससे ही याचना करे। वैसे ही साधक के लिए यह निर्देश है कि ठीक तरह से धर्म मे दृढ विश्वास रखकर लगातार सम्यक् दृष्टि से अपने जीवन की यात्रा को लेकर आगे बढ़ता रहे तो किसी भी वात की मागणी की आवश्यकता नही। उसका रास्ता स्वत साफ होता चला जाता है, और कदाचित् न रहा जाय और मागा ही जाय तो भगवान के अतिरिक्त किसी और के सामने हाथ नही फैलाया जाय इस वात का सकेत भी इसमे दिया गया है—

दूसरी वात, वीच की शताब्दी मे कुछ ऐसी मान्याएँ चल पड़ी थी जिनमे अनेक तरह की मिन्नतें इधर-उधर की होने लगी और साधक अन्य स्थानो पर भटकने लगा। तव ज्ञानियो ने देखा कि जो गलत स्थान पर जाकर मिन्नत करता है, प्रार्थना करता है, इसकी अपेक्षा इसको मूल स्थान पर ही कायम रखा जाय। इस दृष्टि से प्रार्थना की पक्तियो मे यह सकेत भी दिया गया कि भाई, तू जो कुछ भी करना चाहता है वह प्रभु के चरणो मे निवेदन कर। इस दृष्टि से इन वीच की शताब्दियो मे प्रार्थना की इस प्रकार की परम्परा चल पड़ी। लेकिन इनमे कोई वीतराग वाणी के विपरीत है। यह भी नही कहा जा सकता, क्योंकि जहाँ "लोगस्स" का पाठ है उसमें स्पष्ट शब्दो मे कहा है .—

"सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु"

लोगस्स के इस पद मे सिद्धो से प्रार्थना की है कि हेसिद्धदेव ? हमको सिद्धि दो या दिखाओ। लोगस्स का पाठ कौन उच्चारण नही करता है। इसको प्राय' सभी ने अपने प्रतिक्रमण की दृष्टि से सबसे पहले याद किया है। तो वहा पर सिद्धो से मागणी (याचना) की गई है कि सिद्ध भगवान मुझे भी सिद्धि दे। वास्तव में भगवान सिद्धि देते नही हैं लेकिन सिद्धि की भावना जब वह अपने अन्दर जागृत करता है और उसका दृष्टिकोण मागनी का होता है तो इसका तात्पर्य यह लेना चाहिए कि तुम्हारे अन्दर मे जो सिद्धि की योग्यता है अर्थात् तुम्हारो आत्मा योग्यता की दृष्टि से सिद्ध तुल्य हैं। उस सिद्ध तुल्य आत्मा से ही प्रार्थना की गई कि मुझे सिद्धि दे, अर्थात् मेरे अन्दर मे रहने वाले भाव जो सिद्ध पर्याय है, उस सिद्ध पर्याय आत्मा से प्रार्थना की गई कि तुम मुझे यह जीवन दे दो। आप कभी कहेगे कि, क्या यह बात कही सम्भावित हो सकती है। अपने आपको सिद्ध मान कर उससे सिद्धि की याचना की जाय क्या यह सम्भव है ? इसके लिए कहा गया है कि किसी नय की दृष्टि से सिद्ध तो पूर्ण सिद्ध पर्याय है लेकिन योग्यता को दृष्टि से भव्य आत्मा भी सिद्ध रूप मे रही हुई है। इसीलिए कहा है कि सिद्धा जैसा जीव है, जीव सोही सिद्ध होय। कर्म मैल को आतरो, बूझे विरला कोय। आप यह उच्चारण करते है। इसमे किस वात का सकेत है ? सकेत यह है कि आप भो सिद्ध जैसे है लेकिन आप कर्म वन्धनो से वधे है इसीलिए आपअन्य की पुकार कर रहे है। लेकिन यह नय दृष्टि ही सव कुछ नही है, क्योकि यदि एकान्त दृष्टिकोण आगया तो भगवान के मार्ग मे हम भटक जाएँगे। और यदि सापेक्षता को मद्दे नजर रख कर इसको समझने का प्रयास करे तो यह सिद्धि जो अपने मे रही है उसे सिद्धि के रूप मे प्रगट कर सकते हैं। शास्त्रीय दृष्टिकोण की इस उच्चतम स्थिति को समझने से पूर्व हम वर्तमान

जीवन की उन समस्याओं या प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें जिनके कि बिना हम उस स्वरूप को नहीं पहिचान सकते हैं। यदि इस प्रकार क्रमिक प्रयास करते रहे तो हम प्रार्थना के माध्यम से उस सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकेंगे या अपने आप में प्रकट कर सकेंगे जिसकी याचना हम सिद्ध प्रभु से कर रहे हैं।

सोचिए समझिए और फिर करिए

मैं कुछ जीवन के स्वरूप को समझाने का प्रयास कर रहा हूं। यह जीवन क्या है और जीवन की यह वास्तविक परिभाषा हमारे मन मस्तिष्क में कैसे आए, हम कहीं जीवन के नाम पर अजीवन को तो जीवन नहीं समझ रहे हैं, हम कहीं आत्मा के नाम पर अनात्मा को तो आत्मा नहीं समझ बैठे हैं, भगवान के नाम पर अभगवान को तो भगवान नहीं समझ लिया गया है। इन बातों का ज्ञान आपको और हमको स्पष्ट रूप से तब होगा जब कि हम इसका चिन्तन ठीक तरह से करेंगे। जीवन की परिभाषा के साथ अपने वर्तमान जीवन को जानने की कोशिश करें क्योंकि शास्त्रकारों ने मानव को उद्बोधन दिया है — "असंखयं जीवियं मा पमायए" यह जीवन असंस्कारित है अतः प्रमाद मत कर और इस प्रमाद की स्थिति से ऊपर उठकर इसे इस जीवन का संस्कार करके जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास करना है।

इस जीवन की परिभाषा में अनेक व्यक्तियों के लक्षण आपके सम्मुख आ सकते हैं। इन अनेकों में से वास्तविक लक्षण पहचानने का उत्तरदायित्व बुद्धिमान व्यक्ति पर आता है और बुद्धिमान व्यक्ति ही इन अनेकों में से एक का निर्णय करता है। इसी दृष्टि से जीवन की एक परिभाषा आपके सामने रखी जा रही है, उसमें भी आप [illegible] दें और परिभाषा को समझने का प्रयास करें।

इसमें कहा गया है कि [illegible] च तन् तन्

जीवनम्। इसमें सम्यक् निर्णायकम् शब्द पर थोडा गहरा सोचना है क्योकि निर्णायक स्थिति यदि हमारे सामने स्पष्ट होती है तो हमे जीवन का वास्तविक प्रकाश उपलब्ध हो सकता है जिसकी हम प्रार्थना के माध्यम से याचना कर रहे थे। आज सम्यक् निर्णायक स्थिति के अभाव में मनुष्य इधर-उधर भटक रहा है। और खास कर आत्मा के स्वरूप के विषय मे तो वह दिग्भ्रान्त सा हो रहा है क्योकि अलग-अलग दार्शनिक भिन्न-भिन्न रूप मे आत्मस्वरूप को प्रस्तुत करते है। कोई-कोई साख्यादि दार्शनिको का कहना है कि आत्मा कर्त्ता धर्त्ता कुछ नही है। आत्मा परिणामी नही है, आत्मा कूटस्थ नित्य है। एक शरीर की स्थिति मे रहने वाली है। ऐसी आत्मा सम्यक् निर्णायक है, ऐसे विचार जब सामने आते है तो उन पर कुछ चिन्तन आगे बढता है कि यदि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नही है और कूटस्थ नित्य है तो फिर निर्णायक कैसे ? जो परिणामी नही होता वह निर्णायक नही हो सकता है आपके लिए ये शब्द कुछ अपरिचित से आ रहे है। आप कहेगे यह परिणामी क्या है ? परिणामी का अर्थ होता है परिणमनशील। परिणमन स्वभाव है। 'परिणमन से तात्पर्य है एक अवस्था की स्थिति से दूसरी अवस्था मे मुडना, लेकिन दूसरी अवस्था के अन्दर मुडने पर भी अपने स्वरूप को नही छोडना। जैसे स्वर्ण, सोने के रूप मे है। सोना परिणामी है। क्योकि स्वय स्वर्णत्व के रूप मे होते हुए भी ढल सकता है, टूट सकता है, मुड़ सकता है, पिघल सकता है यानि आग के अन्दर द्रवित हो सकता है और दूसरे रूप मे ढल सकता है लेकिन ऐसी स्थिति मे भी स्वर्णत्व रूप को नही छोडता। सोने की डली का आकार टूटा और लड़ी का वह आकार बना। उस डली को अग्नि का ताप लगा, बहुत ज्यादा ताप लगा और वह द्रवित हो गयी, यह डली मे परिणमन हुआ इसको कहते है परिणाम। द्रवित होने के बाद फिर

उनको दूसरे साँचे में ढाल कर, तोड़ मरोड़ कर लड़ी बना दिया लेकिन उस लड़ी में भी स्वर्ण ज्यों का त्यों मिलता है। तो आप समझते होंगे कि उस डली में परिणाम होने का स्वभाव था पर अवस्था अलग होने पर भी, अर्थात् दूसरी-दूसरी अवस्था में उसका परिवर्तन होने पर भी सोने का महत्व और सोने का स्वरूप कायम रहा। कहां तो डली और कहां लड़ी का आकार। आकार बिल्कुल नहीं मिल रहा है लेकिन स्वर्णपन में कोई कमी नहीं आ रही है। यह परिणाम की स्थिति जैसे सोने में है उसी तरह से आत्मा में समझी जायेगी तो आत्मा का सही स्वरूप समझ पायेंगे और यदि ऐसे परिणाम के स्वरूप को नहीं समझ पाये तो आप उस निर्णायक तत्व को नहीं समझ सकेंगे, क्योंकि निर्णय करने का भी एक परिणाम है। आत्मा परिणमनशील है, वह परिणामी है, चैतन्यमय है।

इसका दूसरा विशेषण है कूटस्थ नित्यता जैसे—वज्र का खम्बा कभी झुकता नहीं है उसमें लचक के रूप में परिणाम नहीं होता है उसे कहते हैं कूटस्थ नित्य। आत्मा ऐसी नहीं है कि जिसमें किसी तरह का परिणाम न हो। अगर ऐसा हो तो वह आत्मा नहीं होगी आप भले ही उसे आत्मा के नाम से पुकारें। लेकिन वह अनात्मा है।

बन्धुओ, इसको मैं थोड़ा गहराई से स्पष्ट करने की सोच रहा हूँ कि मैं अधिक गहराई में इस समय नहीं जाना चाहता लेकिन स्वयं की आदत के अनुसार मैं इस बारे में कुछ कहना चाहूँगा कि आप उस आत्म तत्व की गहराई को समझें।

केवल शरीर बदलता है।

आप समझते कि आत्मा एकान्त कूटस्थ नहीं परिणामी भी है क्योंकि एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जा सकती है, लेकिन

दूसरे शरीर मे जाने पर भी वह अपने स्वरूप को नही छोड देती है। एक मनुष्य की आत्मा प्रसग आने पर हाथी के शरीर मे भी जा सकती है। मनुष्य शरीर के आकार मे जो आत्म प्रदेश व्याप्त थे, वे आत्मप्रदेश हाथी के लम्बे चौडे शरीर मे पहुच गये, लेकिन हाथी के शरीर मे पहुचने पर भी जो आत्मा का लक्षण है जो आत्म प्रदेश मनुष्य की आत्मा के अन्दर थे, मनुष्य के पर्याय मे थे वे वही है, उनमे कोई अन्तर नही आया तो परिणामी होते हुए भी आत्मा अपने स्वरूप के अन्दर दृढ है, अटल है। इसी को सत् तत्व की सज्ञा दी गई है। इसलिए शास्त्रकारो ने "उत्पात् व्यय ध्रोव्ययुक्त' सत्", यानी जिसके अन्दर उत्पात् अर्थात् उत्पन्न होना व्यय होना और ध्रुव या अटल रहना ये तीनो अवस्थाये हो वह सत् है, और जिसमे ये तीनो अवस्थाये एक साथ नही पाई जाती है वह तत्व सत् नही असत् है। उस दृष्टिकोण से आत्मा को भी तत्व माना गया है और आत्मा को निर्णायक माना गया है। जव आत्मा तत्व है और निर्णायक है और सत् है तो उसमे ये तीन अवस्थाये अवश्य माननी होगी। इन तीन अवस्थाओ को माने विना आप तत्व के निर्णय को पूरी तरह नही समझ पायेंगे। इन तीन अवस्थाओ को मानेगें तो आत्मा को परिणामी स्वीकार करेगे, और परिणामी स्वीकार करने पर ही आप सोच पायेगे कि उसमे निर्णय करने का भी एक परिणाम है। कभी ऐसा भी विचार सामने आता है कि आत्मा तो कूटस्थ नित्य है यह परिणामी स्वभाव आत्मा का नही, प्रकृति का है, और प्रकृति सत्व रजस् और तमो तीन स्वभावात्मक है। जव तक इन तीनो की साम्यता रहती है तव तक सृष्टि का कोई कार्य नही होता है, लेकिन तीनो अवस्थाओ मे जव विकृति-विपमता आती है तो उसमे महद् तत्व पैदा होता है। उसमे अहकार फिर तनू मात्रा आदि कुछ तत्वो की सृष्टि होकर प्रकृति सारे ससार की रचना कर लेती है और पुरुप के सामने अपना नत्व उपस्थित करती है। इसमे प्रकृति

के अन्दर बुद्धि जो मानी गई है वह प्रकृति का ही गुण है। उस बुद्धि में सफेदी है और उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रतिबिम्ब पड़ने से आत्मा उस प्रकृति की सारी रचना को अपने आप समझ लेती है। और तब उसको यह ख्याल हो जाता है कि यह सारा संसार एक प्रकृति का नाटक है और मैं इस कार्य से अलग हूं ऐसा जब विवेक होता है तो वह प्रकृति से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के विचारों की स्थिति के साथ युक्तियुक्त विचारों का चिन्तन किया जाय तो यह प्रश्न होता है कि प्रकृति के ऊपर पुरुष का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ा? समान प्रकृति का समान प्रकृति पर प्रतिबिम्ब पड़ सकता है। काच में जो मनुष्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो काच पुद्गलों से बना है। और मनुष्य का शरीर भी पौद्गलिक है अतः उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। इस दर्पण में वर्ण, गंध रस और स्पर्श होता है और जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है वह भी वर्ण गंध, रस और स्पर्श वाला होता है।

कहते हैं यदि इस परिणामी नित्य आत्मा को निर्णायक शक्ति के रूप मे लिया जाता है तो वह इस जीवन के साथ, आगे का मोड कर सकती है।

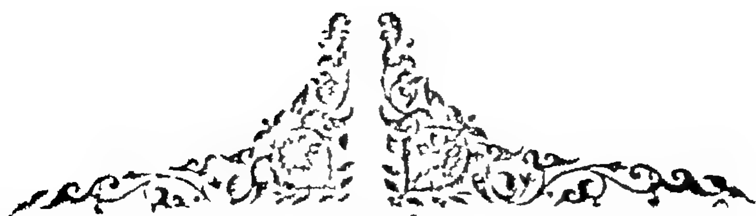
आप जिस शरीर के अन्दर बैठे हुए हैं, जिस परिणामी भाव को धारण करके यह आत्मा मनुष्य पर्याय मे बैठी हुई है इस पर्याय के वास्तविक सस्कारित स्वरूप को समझाने के लिए चरित्रवल का सहारा लिया जाता है ताकि चरित नायको के चरित्र के माध्यम से तत्वो को समझ सकें। मनुष्य जीवन का पर्याय तो हर आत्मा को मिला हुआ है पर जीवन की निर्णायक शक्ति को समझे बिना वह पर्याय अधूरा रह जाता है। एक तरुण के जीवन की स्थिति का एक चिन्तन मैं आपके सामने रखता हूं। एक तरुण जिसकी आत्मा आत्मिक गुणों से परिपूर्ण है और सही निर्णय कर पाने में सक्षम है। वह कविता के रूप मे इस प्रकार है—

निज गुण सुखकारी ध्याता है आत्मराम को

इस भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा मे विख्यात मनिपिंगल नाम का एक देश है। उसमे विविध नगर हैं वे नगर शोभा से युक्त है। उसमें धनी मानी और विद्वान सभी तरह की जनता का आवास है। बस्तिया सभी तरह की वस्तुओ के व्यापार से, आदान-प्रदान से और सामाजिक व्यवस्था से वह देश सम्पन्न है। उस देश का नामकरण पोतनपुर के रूप मे है, उस देश के राजा जयशत्रु के रूप मे विख्यात थे।

यह राजकीय जमाने का प्रसग है, लेकिन राजाओ मे भी सभी ऐशोआराम मे लगे हुए थे ऐसी कल्पना नही करनी चाहिए। अधिकाश भाग विकृत हो सकता है, लेकिन उसमे कुछ शासक निर्लिप्त भी रह सकते हैं।

जो पोतनपुर के राज्य सिहासन पर आरूढ जयशत्रु महाराज थे वे प्रजा का पालन भी पुत्रवत् करते थे। वहा उनकी दृष्टि मे



महामहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

के

चरण कमलों में

शत-शत अभिनन्दन ।

सन्तवाणी
जीवन की
सच्ची निधि
है।
सच्चा मित्र
और मार्ग
दर्शक है।

संजय साहित्य संगम
(साहित्य प्रकाशन का विश्वसनीय प्रतिष्ठान)
दास बिल्डिंग नं० ५
बिलोचपुरा, आगरा-२
फोन : ६१२६४



श्री प्रिंटर्स
(आधुनिक मुद्रणकला का आदर्श केन्द्र)
२६/१५४ राजामण्डी, आगरा-२

भटक गया। साथी पीछे छूट गए, शिकार भी नही मिला, हैरान हो गया। लौट करके पुन राजधानी मे पहुचना चाहता था लेकिन जोर से प्यास लगी हुई थी। वीच मे एक किसान का खेत आ गया, वहा पर एक कुआ था। यह शिकारी के वेप मे राजा उस किसान के कुए पर पहुचा, वहा एक बुढिया को देखता है। राजा को प्यास इतनी जोर से लग रही थी कि वह वोल नही पाया और हाथ से इशारा किया कि मुझे प्यास लग रही है, पानी पिलाओ। बुढिया समझ गई। उसने सोचा यह कोई वेचारा जगली दिखता है। यह कही शिकार खेलने के लिए गया है और हैरान होकर आया है लेकिन मेरे कुए पर आ गया, कुआ भी मेरा एक तरह का घर ही है और घर पर यदि कोई अतिथि आता है तो उसका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य बन जाता है। उसका सत्कार करने के लिए उस बुढिया ने एक गन्ना तोडा। साठे को खीच कर वाहर लाई वह वृद्धावस्था मे भी इतनी ताकतवर थी कि उसने उस गन्ने को निचोड करके रस का लोटा भर दिया और उस राजा को रस पिलाया फिर पूछने लगी—बोलो भाई, अब भी क्या तुम्हारी प्यास अवशेष रही। तो र जा ने कहा माजी, मैंने मागा तो पानी था लेकिन तुमने रस पिला दिया तो भूख और प्यास दोनो गायब हो गई। बुढिया ने निस्वार्थ भावना से रस पिलाया और मानवीय दृष्टि से, वात्सल्य भावना से कहा कि भाई शिकारी—(वह बुढिया नही जानती थी कि यह राजा है)—तुम्हारा मैं क्या सत्कार कर सकती हूं, तुम्हारा ही घर है, तुम अभी जाते हो तो जाओ लेकिन फिर कभी आना। राजा वहा से रवाना हो गया। रास्ते मे जाते जाते वह चिन्तन करता है कि मैंने जमीन का टेक्स बहुत कम लगा रखा है, ये किसान परिवार कितना कमा रहे है एक गन्ने के अन्दर ही इतना रस कि इतन सारा लोटा भर गया। कितना गुड और शक्कर तैयार कर रहे है। इन पर टैक्स अधिक लगाना चाहिए। राज्य मे जाकर उसने बहुत ज्यादा

भटक गया। साथी पीछे छूट गए, शिकार भी नही मिला, हैरान हो गया। लौट करके पुन राजधानी मे पहुचना चाहता था लेकिन जोर से प्यास लगी हुई थी। वीच मे एक किसान का खेत आ गया, वहा पर एक कुआ था। यह शिकारी के वेष मे राजा उस किसान के कुए पर पहुचा, वहा एक बुढिया को देखता है। राजा को प्यास इतनी जोर से लग रही थी कि वह वोल नही पाया और हाथ से इशारा किया कि मुझे प्यास लग रही है, पानी पिलाओ। बुढिया समझ गई। उसने सोचा यह कोई वेचारा जगली दिखता है। यह कही शिकार खेलने के लिए गया है और हैरान होकर आया है लेकिन मेरे कुए पर आ गया, कुआ भी मेरा एक तरह का घर ही है और घर पर यदि कोई अतिथि आता है तो उसका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य बन जाता है। उसका सत्कार करने के लिए उस बुढिया ने एक गन्ना तोडा। साठे को खीच कर वाहर लाई वह वृद्धावस्था मे भी इतनी ताकतवर थी कि उसने उस गन्ने को निचोड करके रस का लोटा भर दिया और उस राजा को रस पिलाया फिर पूछने लगी—बोलो भाई, अव भी क्या तुम्हारी प्यास अवशेष रही। तो र जा ने कहा माजी, मैंने मागा तो पानी था लेकिन तुमने रस पिला दिया तो भूख और प्यास दोनो गायब हो गई। बुढिया ने निस्वार्थ भावना से रस पिलाया और मानवीय दृष्टि से, वात्सल्य भावना से कहा कि भाई शिकारी—(वह बुढिया नही जानती थी कि यह राजा है)—तुम्हारा मैं क्या सत्कार कर सकती हू, तुम्हारा ही घर है, तुम अभी जाते हो तो जाओ लेकिन फिर कभी आना। राजा वहा से रवाना हो गया। रास्ते मे जाते जाते वह चिन्तन करता है कि मैंने जमीन का टैक्स बहुत कम लगा रखा है, ये किसान परिवार कितना कमा रहे है एक गन्ने के अन्दर ही इतना रस कि इतन सारा लोटा भर गया। कितना गुड और शक्कर तैयार कर रहे है। इन पर टैक्स अधिक लगाना चाहिए। राज्य मे जाकर उसने बहुत ज्यादा

टैक्स लगा दिया। जनता उस टैक्स को सुन कर सत्रस्त हुई और कुछ काल बीत गया। उसके बाद कुछ समय पश्चात सयोगवश वह राजा पुन उसी कुए पर जा निकला, फिर वही बुढिया उसको मिली उस बुढिया के सामने उसने पानी की फिर पुकार को उसने उसे पानी के बदले पुन रस पिलाने का प्रयास किया लेकिन अबकी बार एक से काम नही चला, तीन तीन गन्ने उखाडे और उनका रस निचोडा लेकिन तीन तीन गन्नो से भी लोटा पूरा नही भरा और उस रस को पीया तो भी उतना जायका नही रहा जितना कि पहले था। तब इस राजा के मन मे प्रश्न उठ खडा हुआ। वह पूछने लगा माजी, पहले मै आया था तब आपने एक ही साठे से लोटा भर दिया और वह रस कितना मिठासपूर्ण था लेकिन अब की बार तीन तीन साठो मे भी लोटा नही भरा और उसमे भी रस मे वह जायका नही है, क्या बात है ? उस बुढिया ने कहा, अरे भाई क्या बताऊँ—यथा राजा तथा प्रजा। राजा की नीयत खराब हो गई। जो हमारे ऊपर साधारण टैक्स था, राजा मे जनता के हित को भावना थी वह निकल गई और स्वार्थवश होकर इतना टैक्स लगा कर अपना भण्डार भर रहा है और अपने ऐशोआराम में लग रहा है लेकिन जनता का हित छोड दिया गया है, राजा की नीयत खराब हो गई है, इसका प्रभाव जनता पर पडा और जनता का प्रभाव इन पदार्थों पर पडा है जिससे गन्ने की स्थिति वह नही रही जो कि पहले थी। यह बात ऐसे सरल मालुम होती है लेकिन इसका मनोवैज्ञानिक तथ्य बहुत गहरा है। इन्सान की भावना का प्रभाव इन पदार्थो पर कैसे पडता है और कैसे इनके अन्दर इन रसो की कमी होती है। यह सारा विज्ञान यदि बारीकी से समझ मे आ जाय तो अतिशयोक्ति मालुम नही होगी। फिर वह राजा सारी बात समझ गया, और उसने टैक्स कम कर दिया और इस भावना से किया कि जनता का कल्याण हो।

यह रूपक किसी भी तरह से हुआ होगा, मैं तो आपके सामने

इसलिए रख गया हू राजा का असर प्रजा पर पड़े बिना नही रहता। जिस राज्य मे कोई उत्तम पुरुष पैदा होता है उस राज्य मे शासन की स्थित उत्तम होती है। तो जिस तरुण का और जिस राजा का वृत्तान्त आने वाला है उस राजा का जीवन कैसा था, इसका थोडा सा सकेत मात्र किया गया है कि वे कैसे थे उन्होने परस्त्री को माता समझी। पर स्त्री उनकी दृष्टि मे कभी नही आई,अपनी जगत् साक्षी से बनी हुई उनकी स्त्री के अलावा कोई भी वहिन उपस्थित हुई तो उसको माता की निगाह से देखने की कोशिश-करते। जहां शासक के स्वय के जीवन मे इस प्रकार की चरित्र निष्ठा हो, उसके राष्ट्रीय चरित्र की प्रगति होती है। वे राज्य के शासक थे और उन पर सव तरह का उत्तरदायित्व था। वे अक्राता नही बनना चाहते लेकिन यदि कोई अक्राता बन कर आक्रमण करने की स्थिति मे आता है तो वे पहले साम, दाम और भेद की नीति से समझाने का प्रयास करते यदि इनसे भी नही मानता तो दण्ड नीति का प्रयोग करना पड़े तो शत्रु को नाश करने की दृष्टि से नही अपितु आत्मरक्षा व राज्य की रक्षा के लिए और स्वय के आश्रित रहने वाले प्राणियो की सुरक्षा के लिए कार्य करते थे। तो वैसा प्रसग आने पर कभी शत्रु के सामने पीठ नही दिखाते, स्वय आगे वढ कर जाते। वे पास मे रहने वालो को या अपने पास के सिपाहियो और फौज को आगे बढाकर स्वय पीछे नही रहते, बल्कि स्वय सबके आगे रह कर लडाई के मैदान मे उतरते थे। यह सारा विश्लेषण उनके व्यक्तित्व का, उनके चरित्रबल का इसमे कियागया है। उनका चरित्र बल कितना उन्नत था इसकी कल्पना सक्षेप मे मनुष्य कर सकता है। लेकिन उस राज्य मे राजा कितना भी चरित्र वाला हो और वह राष्ट्रीय चरित्र का स्वामी हो लेकिन यदि उसकी धर्मपत्नी उनके अनुरूप नही हो तो वहा की स्थिति डावाडोल हो सकती है। तो महाराजा के साथ में रहने वाली महारानी का जिक्र भी आता है।

उनकी महारानी वसन्तसेना चौसठ कलाओ मे निपुण थी। नारी जाति के जो श्रेष्ठ गुण है उन गुणो से वह अलकृत थी। उसके सौंदर्य की जो कवि की कल्पना थी उसके अनुसार इन्द्र की इन्द्राणी, अप्सरा स्त्री की तरह थी और उसके साथ ही साथ आध्यात्मिक जीवन के साथ धर्मवृत्ति का भी सकेत है कि वह अपने धर्म की दृष्टि से जिस रूप मे चलती थी, उस धर्म की स्थिति का उनके जीवन पर वहुत वडा प्रभाव था, उससे वह जनता की प्रिय वनी हुई थी, उनका जीवन स्व-पर हित दृष्टि से चल रहा था, महाराजा और महारानी का जो दाम्पत्य जीवन का प्रसग आता है, वह दाम्पत्य जीवन भी केवल भौतिक दृष्टि का ही नही अपितु आध्यात्मिक दृष्टि का भी प्रतीक था और उसी जीवन के अन्दर उन्होने जीवन के मर्म को समझने का प्रयास किया। महारानी के सम्पर्क से महाराजा अपने जीवन की स्थिति को आगे वढाने मे कैसे सफल रहे हैं। निर्णायक रूप मे एक इन्सान की जीवनी आने वाली है, वह आत्मा किस रूप मे आती है यह तो समय पर ही ज्ञात हो सकेगा। अभी तो मैंने इस चरित्र को प्रारम्भ करने से पहले थोडा सा सकेत दे दिया है कि शासक कैसे थे, महारानी और नागरिको की स्थिति क्या थी, इसका सक्षेप मे जिक्र कर दिया है, इसको आप ध्यान मे रखकर वर्तमान जीवन के साथ तुलना करें और उसके सम्बन्ध मे अपने जीवन को समझने का प्रयास करे तो आपका जीवन भी मगलमय होगा और निर्णायक शक्ति को समझने मे कामयाब हो सकेंगे। इसी भावना से अभी तो इस विषय को यही रख कर समाप्त किए देता हू।

लाल भवन
२८ जुलाई ७२



अज्झत्थहेउं निययस्स बंधो

—उत्तराध्ययन १४।१९

अन्दर के विकार ही वस्तुत बधन के हेतु हैं। निर्विकार जीवन ही निर्मल होता है।

---

१० | निर्मल जीवन

विमल जिनेश्वर सेवियै थारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे जीवा।
विषय विकार विसार ने रे जीवा तू मोहनीय कर्म खपाय रे जीवा ॥

बन्धुओ,

यह विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रभु के नाम भी कैसे कैसे आ रहे है। विमल शब्द, यह शब्द हर व्यक्ति के मन मे एक विमलता की भावना उत्पन्न करने वाला है।

विगत यस्य मल स विमल ।
अथवा विगतोमलो यस्मात् स विमलः ॥

जिसमे से मल चला गया है वह विमल बन गया। गटर के पानी मे मैल मिला रहता है इसलिये वह पानी गन्दा रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि यह पानी गन्दा है, विमल नही है, निर्मल नही है। लेकिन जहा हौज का स्वच्छ और निर्मल पानी है उसको निर्मल कह

सकते हैं। जड पदार्थ मे भी विमलता की स्थिति, जड रूप मे रहती है, पर यहा विमल का प्रसग चैतन्य तत्व मे है। हमारी यह आत्मा अनादि काल से मलयुक्त बनी हुई है। एक जन्म से नही, अनन्तानन्त जन्मो से।

कब से यह मलयुक्त बनी, इसका कोई छोर नही है। पहले कभी भी यह आत्मा निर्मल नही थी क्योंकि एक वक्त निर्मल बन जाने के बाद मे किंवा एक वक्त कर्मो के आवरण के सर्वथा हट जाने पर वह आत्मा पुन मलयुक्त नही बनती।

यह कल्पना करना कि पूर्व मे यह आत्मा मलरहित थी और बाद मे मलयुक्त बनी, असगत है। क्योंकि अगर मल रहित होकर भी मलयुक्त बन सकती है तो फिर इस विश्व मे कोई भी आत्मा ऐसी नही रहेगी जो सदा सर्वदा के लिये मल रहित हो। फिर तो सिद्ध परमात्मा भी कर्ममल से युक्त बनने लगेगा। इसलिये शास्त्रकारो का कथन है कि यह आत्मा अनादि काल से कर्मो के मल से युक्त है, मोह और माया का जाल इसके साथ लगा हुआ है, छल और कपट के पटो से आवारित है, स्वार्थो के घटाटोप मे यह आत्मा छिपी हुई है। इसने अनेक योनिया मे भ्रमण करते हुए आज तक पूर्ण रूप से निर्मलता प्राप्त नही की।

जिन आत्माओ ने इस बीच मे अनादि काल के लगे हुए मल को धो दिया, मोह माया और ममत्व को सर्वथा नष्ट कर दिया और जिन्होंने परम छोर की निर्मलता प्राप्त कर ली, वे विमलनाथ के रूप मे बन गए हैं।

जो आत्मा अनादिकाल से मलयुक्त है वह भी किसी न किसी समय मल रहित हो सकती है। मोटे तौर पर एकदेशीय उदाहरण के द्वारा आप इस विषय को समझ लीजिये। सोना है।

कहा रहता है यह ?

जमीन मे, मिट्टी मे।

सोना मिट्टी मे दवा पडा है। वह सोना कब से मिट्टी मे है, इसका कोई अन्दाज लगा सकता है ? अनादि काल से मिट्टी के साथ वह घुला मिला हुआ है। पर उस अनादि काल से मिट्टी के घुलने वाले को भी एक दिन मिट्टी से रहित किया जा सकता है। उसको भी निखालिस वनाया जा सकता है। वह कुन्दन बन सकता है।

इस एक देशीय उदाहरण से अनादि काल से मिट्टी के समान कर्मो के साथ आत्मा लिप्त हो रही है। पर प्रयत्न विशेष से इसको भी इस कर्म रूप मिट्टी से अलग करके निखालिस निर्मल बनाया जा सकता है। जीवन के ऐसे निर्मल प्रसग को जिन्होने उपस्थित किया वे विमलनाथ भगवान् कहे जाते है उन्ही के चरणो मे आज प्रार्थना का प्रसग है।

विमल जिनेश्वर सेविये
तू मोहनीय करम खपाय रे जीवा।

प्रार्थना की ये पक्तिया सीधी सादी है और सम्बोधन भी बडा सुन्दर है। तू विषय विकारो को छोडकर, विमलनाथ भगवान् की सेवा मे यदि लग जाता है तो तेरे ये तमाम बन्धन टूट सकते है। लेकिन यह सोचने का विषय है कि विमलनाथ भगवान् के चरणों में लगेगा कौन ?

लगने वाले अपने आपको समझेगे तब ही तो लगेंगे, जिसने अपनेआपको नहीं समझा वह कैसे विमलनाथ के चरणो में जाएगा ?

आप सब यहा व्याख्यान के स्थल पर उपस्थित हैं। आपको मे कभी पूछ लू कि आप कौन हैं ? बतलाओ !

आत्मा हैं।

आत्मा हैं ? तो आत्मा का स्वरूप क्या है ? आज उस आत्मा के स्वरूप को ही हमे ठीक समझना है। एक आध या कुछ व्यक्ति वता सकते हैं कि आत्मा है, पर मेरा प्रश्न कुछ व्यक्तियों से नहीं है,

कुछ व्यक्ति थोड़े जानकार रहते हैं। कुछ और अधिक जानकारी रखते हैं। पर आम जनता का विषय अभी तक उस जानकारी से परे है और वे जब अपने आपकी स्थिति को पहचान नहीं पाते तो उनको निर्मलता का स्वरूप, विमलनाथ का स्वरूप कैसे समझ में आ सकता है ? उस विमलता को प्राप्त करने के लिये हमें प्रयास करना है और इस प्रश्न को हल करना है कि जीवन क्या है ? इस जीवन की परिभाषा में आये हुए शब्दों को और उसके भाव को समझना है। इन शब्दों को और उनके अर्थ को ठीक तरह से समझ लेंगे तो हम अपने आपको भी पहचान लेंगे और जीवन की परिभाषा को भी व्यवस्थित रीति से समझ लेंगे।

इसके लिये जो आपके सामने परिभाषा आ रही है कि—

"सम्यग् निर्णायक समतामय च यत् तज्जीवनम् ।"

जो सम्यग् निर्णायक है समतामय है वह जीवन है। उस सम्यग् निर्णायक और समतामय की शक्ति को कभी आत्म रूप से पुकारा जाता है और कभी उसको निर्णायक रूप में कहा जाता है।

लेकिन वह निर्णायक कैसे ?

मैं समझता हूँ—आत्म तत्व की मान्यता से शायद ही कोई इन्कार करे, लेकिन आत्मा का सही स्वरूप समझने में अधिकांश भ्रान्तियुक्त हैं।

आत्मा मानी जा रही है पर कल मैंने बताया था कि आत्मा मानने वाले आत्मा को परिणामी नहीं मानते हैं तो वे वस्तुतः आत्मा के स्वरूप को नहीं समझ रहे हैं, और एक दृष्टि से देखा जावे तो वे अन्धकार में भटक रहे हैं, भ्रान्तियुक्त हैं। अन्धकार युक्त हैं, प्रकाश की किरणों से दूर हैं। जब उस आत्मा को परिणामी माना जावेगा तभी उसके साथ कर्तृत्व और भोक्तृत्व का सम्बन्ध जुड़ेगा।

एक स्वतंत्र तत्व "आत्मा"

आत्मा ज्ञानवान है और वह ज्ञान युक्त गुण भी ऊपर से चिपकाया हुआ नही है। वह आत्मा के साथ अभिन्न रूप से तदाकार रूप मे रहता है। अगर ज्ञान अलग चीज है और आत्मा अलग चीज है और किसी पदार्थ से उन ज्ञान को आत्मा के साथ चिपका कर यदि कोई उसकी स्थिति को समझाता हो तो यह दृष्टिकोण भी असस्कारित मानस का है।

ज्ञान आत्मा के साथ अलग से लाकर चिपकाया नही जाता। ज्ञान तो आत्मा की शक्ति के रूप मे है। आप सूर्य को देख रहे है। इस सूर्य की किरणे सूर्य के साथ किस सम्बन्ध से रही हुई है ? किरणे अलग हैं और सूर्य अलग है क्या आप यह अनुभव कर रहे है ? नही। तो क्या किसी दूसरे ठिकाने से किरणो को लाकर किसी चिपकाने वाले पदार्थ के द्वारा वे सूर्य के साथ चिपका दी गई है। अथवा वे किरणे सूर्य का रूप ही है ? आप इस को समझ लेंगे तो आगे की स्थिति भी स्पष्ट हो जावेगी।

सूर्य की किरणे सूर्य से अलग नही है। अगर अलग हो जावे तो कोई उसको सूर्य नही कहेगा। वह पिण्ड सूर्य नही कहलावेगा। सूर्य वह है जिसके अन्दर किरणे ओत-प्रोत है। जैसे सूर्य की किरणे सूर्य से भिन्न नही और बाहर से लाकर चिपकाई भी नही जाती वैसेही ज्ञान शक्ति चैतन्य शक्ति आत्मा से भिन्न नही, आत्मा के साथ ही सूर्य की किरणो की तरह वह ओत-प्रोत है। उनको कथचित् भिन्न भी कह सकते है और कथचित् अभिन्न भी। यह तो स्याद्वाद् दृष्टिकोण है। पर आत्म-स्वरूप को समझने वाली सम्यग्दृष्टि आत्मा सबसे पहले आत्मा को चैतन्यमय माने और उसके साथ ही साथ दूसरा विशेषण इसका परिणामी माने। जो परिणामी है वह कर्त्ता भोक्ता की स्थिति मे आता है। जिसके अन्दर परिणाम नही है वह कर्त्ता भी नही हो सकता और न वह किसी चीज का भोक्ता हो सकता है। कर्तृत्व शक्ति और भोक्तृत्व शक्ति दोनो एक दृष्टि मे आत्मा के स्वभाव गुण के अन्तर पेटे

में है। क्योंकि आत्मा के अन्दर एक क्रियावती शक्ति मानी गई है, आत्मा क्रियावान् है। पर वह शक्ति आत्मा से ज्ञान की तरह अभिन्न है और उसके अन्दर जब क्रिया होती है तब इन्सान यह समझ पाता है कि यह काम मैंने किया है, और यह काम मैं करने वाला हूं। यह प्रश्न तब समझ में आता है जब कर्त्तृत्व शक्ति को आत्मा का गुण माना जाय और यह मानना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि इस विज्ञान को जाने बिना किसी प्रश्न का समाधान नहीं होगा।

आप यहां बैठे हैं, कहां से चल कर आये हैं? और वह आने वाला कौन है?

मेरे कुछ ऐसे ही प्रश्न होते हैं। क्योंकि मैं एक दृष्टि से आप से धर्म चर्चा करने के लिये बैठा हूं। मैं उन वक्ताओं की दृष्टि से भाषणबाजी करने नहीं बैठा हूं। मैं तो एक साधक के रूप में हूं और आपको भी साधक के रूप में समझ कर चरचा करने के रूप में कुछ बातें बतला रहा हूं तो यह भी प्रश्न हो जाता है कि कौन चल कर आया है?

जड़ नहीं आत्मा आई है।

क्रिया हो रही है। लेकिन एक व्यक्ति इधर से उठकर उधर बैठ रहा है वह क्रिया हो नही रही है **बल्कि यह क्रिया की जा रही है।** अपने घर से व्यक्ति चला, वह अपनी कर्तृत्व शक्ति के साथ शरीर को साथ मे लेकर चला लेकिन शरीर वर्तमान की स्थिति मे अ त्मा मे ओत-प्रोत हो रहा है। लोह पिण्ड के अन्दर जैसे आग का प्रवेश है और उस लोह पिण्ड को आग के गोले के रूप मे पुकारा जाता है वैसे ही यह आत्मा इस समय इस शरीर पिण्ड के साथ मे आग की तरह शरीर मे ओतप्रोत हो रही है। तो जैसे उस लोह पिण्ड को आग युक्त होने से लोह पिण्ड न कह कर आग का गोला कहा जाता है वैसे ही वर्तमान मे आत्मा को इस शरीर युक्त होने के कारण इस शरीर सहित आत्मा को आत्मा कहा जाता है। इस समय शरीर को हम सर्वथा जड़ नही कह सकते। हम उस सूत्र पर चिन्तन करे जो भगवती सूत्र मे प्रश्न के रूप मे आया है —

"आया भन्ते काया अन्ने काया ?

भगवन् ? आत्मा काया है या काया अन्य है ? तो भगवान ने उत्तर दिया "आयावि काया अन्नेवि काया।" आत्मा काया रूप भी है और अन्य रूप भी। इसी प्रकार आत्मा को रूपी आत्मा भी कह सकते है उसका भी प्रश्न वहा भगवती सूत्र मे आया है —

रूवी ए भन्ते आया अरूवी आया ?

हे भगवन आत्मा रूपी है या अरूपी ? तो उत्तर मिलता है :—

गोयमा ! रूवीवि आया अरूवी वि आया।

हे गौतम ? आत्मा रूपी भी है, और अरूपी भी है। रूपी आत्मा किस रूप मे, जब तक कर्मों के साथ लिप्त है और शरीर का पिण्ड धारण करके चल रही है तब तक इसको रूपी आत्मा कहा जाता है और वह रूपी आत्मा चलती है चल कर अन्य स्थान पर पहुचती है। आप जो आये है रूपी आत्मा के

निकाल लेना चाहिए। इस तरह वह निर्णय लेकर चल पड़ता है और जब चलता है तो रास्ते मे बहुत ट्रैफिक है उस ट्रैफिक के बीच मे,से होकर आता है लेकिन अपने आपको अखण्ड लेकर आता है, कही ऐक्सीडेन्ट नही होता, कही टकराव नही और लाल भवन मे प्रवेश करता हुआ सीधा नही आता, नीचे टेढी-मेढ़ी नाल है लेकिन कही दीवार से टकराता है ? नही। चाहे अँधेरा क्यो न हो लेकिन एकाएक टकराता नही। तो बन्धुओ विचार यह करना है कि इस प्रकार कार्य करने की निर्णायक ;शक्ति किस मे है ? वह जिसमें है वह आत्मा है और वह निर्णायक तत्व है। उस कर्तृत्व को हर हालत मे मानना पड़ेगा। और कोई इन्सान कहे कि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नही है, और यह जो कुछ होता है वह शरीर से होता है, यह बोल रही है तो यह जिह्वा बोल रही है और आत्मा तो कुछ नही बोलती। मैं कभी-कभी विचार करता हू कि कितने वचपने की सी वात है और कितनी असस्कारित वात है। आत्मा जब तक वैज्ञानिक शक्ति से वोलने का प्रयत्न नही करेगी तो वेचारी आत्मा रहित जिह्वा क्या समझती है कि मुझे क्या शब्द वोलने है। वह जिह्वा और मुह क्या समझता है कि वह कुछ खुल सके। वह कुछ नही समझता। उसमे वोलने वाली, चेतन्य कर्तृत्व शक्ति वाली आत्मा है इसलिए आत्मा के अन्दर कर्तृत्व गुण है। शरीर के माध्यम से जो खाना खाते हैं, यद्यपि खाना शरीर के अन्दर आ रहा है लेकिन खाने की जो व्यवस्थित क्रिया है वह आत्मा की हे और खाने का कर्तृत्व भी आत्मा के साथ है। कोई विना आत्मा के कर्तृत्व के खा ले तो जहर सामने रख दो उसको वह जहर का ज्ञान कौन कराता है। यह खट्टा है, मीठा है। मुझे मीठा खाना है खट्टा नही, इस वात का विज्ञान कराने वाला कौन है ? क्या जिह्वा मे ताकत है ? चैतन्य रहित जिह्वा कुछ भी ज्ञान की शक्ति नही रखती, इसलिए

जो भव्य स्वप्न आया है यह मुझे आज क्या संकेत दे रहा है, कौन सी बात का फल देने वाला है ? वह चिन्तन करने लगी कि जो उत्तम स्वप्न आते है, वे कुछ न कुछ लाभदायक होते हैं। इस भावना से महारानी बिविध कल्पना करने लगी और अनुमान लगाया कि सम्भव है कि मुझे ऐसा स्वप्न आया तो मेरी कोख मे कोई उत्तम पुरुष आ सकता है, क्योकि जब कभी उत्तम पुरुष के आने का प्रसग आता है तो ऐसा स्वप्न आता है। इस प्रकार महारानो भी स्वप्न का चिन्तन करके कुछ अनुमान लगा पाई। लेकिन यह सोचा कि जो मुझे स्वप्न आया है इसका मे स्वयं ही निर्णय न करके अपने प्राणनाथ जो मेरे पतिदेव है उनके सामने भी इसका वर्णन करूँ और उनके मुखार्विन्दु से भी इस स्वप्न का अर्थ समझूँ। इसी भावना को लेकर . उसने सोचा मेरे पतिदेव की शैया पास के कमरे में है। में पतिदेव के चरणो मे पहुचकर इस स्वप्न का सारा वृतान्त उनसे कहू । प्राचीन काल के अन्दर रहने वाले मनुष्यो की एक आचार सहिता होती थी। गृहस्थ अवस्था मे रहने वाले जो पुरुप अपने जीवन को चरित्रनिष्ठा के साथ रखना चाहते है वे विपय वासना के कीड़े नही होते। उनका शयन कक्ष भी अलग-अलग होता था। पति के सोने का कमरा अलग और पत्नि के सोने का कमरा अलग। वे उस दृष्टि से दोनो विभक्त थे। जब वह वहां से उठी और पतिदेव के कमरे मे योग्य समय पर पहुँची जिस समय कि पति की निद्रा प्राय समाप्त हो चुकी थी, कुछ थोडा सा आलस्य अवश्य था। जैसे ही उसके पैरों की आहट हुई तो महाराजा जाग गये। आंख खोलकर देखते है तो महारानी जी नजदीक खडी है, कहा, महारानी अभी इस समय आपका यहा आगमन कैसे ? नाथ ! आज मैं आपके सामने कुछ प्रश्न लेकर उपस्थित हुई हू। कहा, कौन सा प्रश्न है ? झट से उनको समीप मे सिंहासन दिया। महारानी बैठी और

अन्धकार से परे हो जाता है। जो यह समझते है कि हमारा किया क्या हो सकता है, जो कुछ होता है वह तो उसके अधीन है, दूसरा ही करने वाला है, कोई दूसरा ही नचाने वाला है और हम तो कठपुतली की तरह नाचने वाले है, हमारा किया कुछ नही होता। कभी-कभी तो हम यहा तक पहुच जाते हैं कि यह सब कुछ कराने वाला भगवान है। कितनी बडी बात कह दी। भगवान कराने वाला है तो भगवान विमल है कि मल सहित है? जो रागद्वेषरहित है वह यह सब कराता है तो ईश्वर इस आत्मा को रागद्वेष मे क्यो गिराता है। मलिन करने के लिए क्यो पाप कर्म करवाता है, क्यो नास्तिक कर्म करवाता है—ऐसे अनेक प्रश्न आकर सामने खड़े हो जायेंगे, जिनका कि समाधान नही हो पायेगा। और वस्तुत. जहा विचित्र ढग से सोचा जाता है वहा समाधान नही हो पाता है इसलिए वह ईश्वर तो सदा तटस्थ अपने स्वरूप के अन्दर तल्लीन है और वह विमल है। हमने उस विमलता का आदर्श सामने रखा, कर्तृत्व शक्ति को अपनी समझ कर अच्छा करते है तो उसका अच्छा फल भोगेंगे और पाप कर्म करेंगे तो बुरा फल भोगेंगे क्योकि आत्मा मे कर्तृत्व शक्ति है। यह सब व्यक्तियो के साथ रही हुई है इस भावना को लेकर इन्सान को अपने जीवन का चिन्तन करना चाहिए और इसके साथ ही साथ यह भी चिन्तन करना चाहिए कि हम अपनी शक्ति के अनुसार अपना तो निर्माण करते ही है लेकिन साथ ही पडोसियो का निर्माण भी कर सकते है, कुछ सामाजिक सस्थाओ का भी निर्माण करने मे निमित्त बन सकते हैं। उसमे निमित्त के रूप मे भी कर्तृत्व हमारे सामने आ सकता है। जैसे कुम्भकार, घडा वनाता है। घडा बनाने के दो मुख्य कारण है एक तो उपादान और एक निमित्त। उपादान का तात्पर्य यह है कि जो कार्य रूप मे परिणत हो जाये। मिट्टी का ढेला मिट्टी के ढेले के स्वरूप को

इनमे से एक की भी कमी रह जावे तो लक्ष्य प्राप्ति मे अधूरापन रह सकता है। बाधा आ सकती है।

मैं अभी इस विषय को अधिक गहराई मे नही ले जा रहा हू। कभी प्रसग आ गया तो खुलकर चर्चा करने का विचार है। यहा तो कुछ थोडी सी वस्तुओ का विवेचन करके आगे चलना चाहता हू।

सन्त जन-समुदाय के लिये निमित्त कर्ता बनकर जीवन निर्माण की स्थिति का कार्य करते है, चरित्र निर्माण की भावना उत्पन्न करते है, उपादान शक्ति को भी विकसित करने का शक्ति भर प्रयास करते हैं और उनके निमित्त रूप मे उपस्थित होकर कार्य कर पाते है। वैसे ही सन्तो के अभाव मे जो परिवार के मुखिया है उन पर परिवार के निर्माण का दायित्व है सन्तान की स्थिति को सुसन्तान के रूप मे परिणत करने मे निमित्त कारण उनके परिवार के अन्दर रहने वाले सदस्य अथवा परिवार का मुखिया बनता है। आप दृष्टान्त रूप मे समझिये कि घर के अन्दर रहने वाली माता अपनी सन्तान को सुसस्कारित बनाने मे कुम्भकार की तरह निमित्त कर्ता बन सकती है। लेकिन किसकी ?

सन्तान की।

पर सन्तान कैसी हो। उस घर मे जन्म लेने वाला पुत्र सुशील हो, चारित्र सम्पन्न हो और वह अपने जीवन को सुन्दर तरीके से निर्माण करने वाला साबित हो इस भावना से यदि माता या पिता अपनी स्थिति से कुछ कार्य करे तो सन्तान का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं और यदि माता-पिता लापरवाह रहे तो यह काम किसी सीमा तक नही हो पावेगा। सन्तान को जन्म दे देना एक बात है पर उसको पढा लिखाकर सुन्दर तरीके से उसका जीवन निर्माण कर देना दूसरी बात है।

मैं आपके सामने जो एक विशिष्ट पुरुष का चरित्र रखना चाह रहा हू उस विशिष्ट पुरुष के जीवन का निमाण करने वाला कौन

कर रही है। जन-जन के मुँह से शब्द निकल रहे थे।

वह पवित्र जीवन लेकर चलने वाली महारानी। उसे स्वप्नो का अधिक प्रसग नही आता। शान्ति के साथ जीवन यापन करती है। अधिक कार्य मे भी व्यवस्थित रूप से चल रही है। एक दिन को बात है वह शय्या पर सोई हुई थी। उसने एक दिव्य स्वप्न देखा। उस स्वप्न मे देखा कि एक दिव्य सरोवर जिसमे निर्मल पानी भरा हुआ है उसमे और भी बहुत से कमल खिलकर महक रहे है। कमलो के अन्दर से सुन्दर पराग बिखर रहा है और चारो ओर सुगन्धि फैल रही है। तो उसने रात्रि को इस प्रकार का स्वप्न देखा। महारानी स्वप्न को देखते ही जगी और सोचने लगी कि मुझे सहसा कोई स्वप्न नही आता, लेकिन आज जो अचानक स्वप्न बना है यह किसी न किसी बात की सूचना देने वाला है और मुझे इस स्वप्न का सुन्दर तरीके से चिन्तन करना है। जिन भाई और बहिनो को बहुत स्वप्न आते है जिनकी कि गिनती नही रहती उनके स्वप्न सार्थक नही होते। प्राय वे सब मानसिक कल्पनाओ के रूप मे होते है। उनके स्वप्नो की स्थिति सामान्य पदार्थो की बनती है।

वैसे स्वप्न की धारा मानसिक विचारो के साथ है। मन के अन्दर जो कुछ देखकर सस्कार डाले गये है और जिन पदार्थों को ग्रहण करना चाहते है उनकी पूर्ति नही हुई, और उनकी चिन्ता लेकर सो गये तो रात्रि मे उसी का स्वप्न देखने मे आ जावेगा। अथवा वह कही से कुछ सुन लेता है कुछ देख लेता है, या सूंघ लेता है कुछ चख लेता है या कुछ स्पर्श कर लेता है या अनुभव करता है तो उसका भी मिला जुला स्वप्न बन जाता है और उसी मे रातभर भ्रमण करता रहेगा और जिनका दिल इतने तुच्छ स्वार्थों मे तल्लीन होता है उनको तो दिन मे बैठे बैठे ही स्वप्न आ जाया करते हैं।

सन्त लोग कभी-कभी कुछ बोल दिया करते है और मैने भी एक बात इसी तरह की सुनी है। एक श्रावक जी सामायिक मे बैठे

जो भव्य स्वप्न आया है यह मुझे आज क्या सकेत दे रहा है, कौन सी बात का फल देने वाला है ? वह चिन्तन करने लगी कि जो उत्तम स्वप्न आते है, वे कुछ न कुछ लाभदायक होते है। इस भावना से महारानी बिविध कल्पना करने लगी और अनुमान लगाया कि सम्भव है कि मुझे ऐसा स्वप्न आया तो मेरी कोख मे कोई उत्तम पुरुष आ सकता है, क्योकि जब कभी उत्तम पुरुष के आने का प्रसग आता है तो ऐसा स्वप्न आता है। इस प्रकार महारानी भी स्वप्न का चिन्तन करके कुछ अनुमान लगा पाई। लेकिन यह सोचा कि जो मुझे स्वप्न आया है इसका मे स्वयं ही निर्णय न करके अपने प्राणनाथ जो मेरे पतिदेव है उनके सामने भी इसका वर्णन करूँ और उनके मुखार्विन्दु से भी इस स्वप्न का अर्थ समझूँ। इसी भावना को लेकर . उसने सोचा मेरे पतिदेव की शैया पास के कमरे मे है। मै पतिदेव के चरणो मे पहुचकर इस स्वप्न का सारा वृतान्त उनसे कहू। प्राचीन काल के अन्दर रहने वाले मनुष्यो की एक आचार सहिता होती थी। गृहस्थ अवस्था में रहने वाले जो पुरुष अपने जीवन को चरित्रनिष्ठा के साथ रखना चाहते है वे विषय वासना के कीडे नही होते। उनका शयन कक्ष भी अलग-अलग होता था। पति के सोने का कमरा अलग और पत्नि के सोने का कमरा अलग। वे उस दृष्टि से दोनो विभक्त थे। जब वह वहाँ से उठी और पतिदेव के कमरे मे योग्य समय पर पहुँची जिस समय कि पति की निद्रा प्राय. समाप्त हो चुकी थी, कुछ थोडा सा आलस्य अवश्य था। जैसे ही इसके पैरो की आहट हुई तो महाराजा जाग गये। आंख खोलकर देखते है तो महारानी जी नजदीक खडी है, कहा, महा रानी अभी इस समय आपका यहा आगमन कैसे ? नाथ ! आज मै आपके सामने कुछ प्रश्न लेकर उपस्थित हुई हू। कहा, कौन सा प्रश्न है ? झट से उनको समीप मे सिहासन दिया। महारानी बैठी और

सकता है। जैसे सरोवर के अन्दर कमल खिले हुए थे उसी तरह से तुम्हारे पुत्र के जीवन मे आन्तरिक कमल खिलेंगे, उससे गुणो की सुगन्धि फैलेगी। उन्होने कहा कि मैंने जितना श्रवण कर रखा है जितनी शिक्षा पाई है उतनी आपके सामने रख रहा हूँ। आपने स्वप्न देखने के बाद निद्रा ली या नही ?

नाथ ? मैंने तो कुछ भी निद्रा नही ली। उसी समय मैं धर्म चिन्तन मे बैठ गई।

"बहुत अच्छा।" उत्तम स्वप्न के वाद निद्रा नही लेनी चाहिए। नही तो, उसका फल मारा जाता है। तुमने उत्तम स्वप्न आने के बाद मन मे बुरा सकल्प तो नही किया ?

नही नाथ, इनता तो मैं जानती हू फिर खोटा सकल्प क्यो करती। मै भी कुछ अनुमान लगा रही थी। पर अब आपके चरणो को पाकर धन्य हो गई। आपने इसका अर्थ विस्तार से वतलाया है। आपकी सभी वातो को मै हृदयगम करती हू और विश्वास करके अपने जीवन की स्थिति को शान्त रखने का विचार करती हू।

"महारानी, तुम्हारी कुक्षी से जन्म लेने वाला कुल भूषण होगा, कुल की शोभा वढाने वाला होगा। यद्यपि पुत्र मे उपादान शक्ति तो अपनी है पर निमित्त कर्ता के रूप मे तुम बनोगी अतः तुम्हारा जीवन जितना निर्मल होगा उतनी ही गर्मस्थित तुम्हारी सन्तान निर्मलता की तरफ बढती जावेगी इसलिए तुम यह प्रयास करो कि तुम्हारा जीवन निर्मल से निर्मलतर बनता जावे और उस प्रयास के द्वारा तुम अपनी सन्तान के जीवन को भी सुसस्कारित बना सको।

इस चारित्र भाग से हमें भी कुछ सोचना है। इसीविषय की पूर्ति के लिए विमलनाथ की प्रार्थना चल रही है—

विमल जिनेश्वर सेविये

आप इसके आधार पर अपने जीवन के कर्तव्यो को समझकर अपनी क्रियात्मक उपादान और निमित्त शक्ति को समझने का प्रयास करेंगे तो हमारा जीवन धीरे धीरे निर्मलता की तरफ बढता जावेगा। इस निर्मलता की तरफ बढते हुए आप भी विमलनाथ की तरह बन सकते है।

लाल भवन
२९ जुलाई ७२

